...ded into two parts. The first contains the following

...rtation on the art of writing being known to the Indo-
...ncient times.
...digenous origin of the Pâlî alphabets.
...origin and existence of the Gândhâra alphabets in India.
... History of the deciphering of ancient inscriptions.
... Epochs of various Indian eras as found in inscriptions &c., as the
...rshi, Kaliyuga, Nirvâ*n*a of Buddha, Maurya, Vikrama, *Sh*aka, Chedi,
...pta-Vallabhi, Harsha, Gângeya, Nevâra, Lakshma*n*a Sena, Châlukya
...ikrama, Simha and Kolama eras.

VI. Ancient numerals.

The second part consists of a series of 52 illustrative plates accompanied by short descriptions. Of these plates the first 24 give alphabets of Northern and Western India; Nos. 25 and 26, Gândhâra alphabets; from 27 to 37, alphabets of Southern India. Every one of these 37 plates contains in addition to the alphabets some lines of the original inscription or copper plate grant, from which it has been prepared. The plates Nos. 38 and 39 show ancient Tâmi*l*a alphabets; the 40th certain numerals from various inscriptions &c., given both in words and figures; 41 to 43, various numerical symbols of the ancient times, and 44 to 50, alphabets of different vernacular languages of India. Plate 51 shows the regular developement of the present Deva Nâgari characters, and the last contains such letters as are not met with in the first 39 plates.

I have tried my best to make the book useful to my fellow country men and shall think myself amply rewarded if my labours contribute to arouse interest in their minds in the cultivation of the knowledge of what concerns them most— the early history of their father-land.

Victoria Hall, Oodeypore,
August 7th, 1894.

भूमिका.

प्रकट है, कि भारतवर्षके विद्वानोंने वेद, न्याय, व्याकरण, काव्य, साहित्य, गणित, वैद्यक आदि विषयोंमें जैसा उत्तमोत्तम श्रम किया, वैसा इतिहास विद्यामें नहीं पायाजाता है. क्योंकि मिसर, यूनान, चीन आदि देशोंका, जैसा चार पांच हज़ार वर्ष पहिलेका शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है, वैसा इस देशका नहीं मिलता. बुद्धके पूर्व और कुछ उत्तर समयका अर्थात् सूर्य, चंद्र, नन्द, मौर्य, सुंग, काण्व, आंध्र, आदि राजवंशियोंका इतिहास महाभारत, रामायण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, श्रीमद्भागवत, वायुपुराण आदि धर्मग्रन्थों, और रघुवंश, मुद्राराक्षस आदि काव्य और नाटकके पुस्तकोंमें बिखरा हुआ मिलता है, परन्तु उनमें बहुधा शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त धर्म कथाओंके साथ मिले हुए होने, और राजाओंके चरित्र मनमाने तौरपर अतिषयोक्तिके साथ लिखनेसे ऐसा गड़बड़ होगया है, कि उनके सत्यासत्यका निर्णय करना दुष्कर है. ठीक ऐतिहासिक रीतिसे लिखा हुआ पुस्तक केवल कश्मीरका इतिहास राजतरंगिणी है, जिसके रचनेका प्रथम प्रयास भी मुसल्मानोंके इस देशमें आनेके पश्चात् (शक संवत् १०७० = विक्रम संवत् १२०५ में) कश्मीरके अमात्य चंपकके पुत्र कल्हणने किया था. इसके अतिरिक्त श्रीहर्षचरित, गौडवहो, विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहसांकचरित, पृथ्वीराजविजय, कीर्तिकौमुदी, द्व्याश्रयकोश, कुमारपालचरित्र, हम्मीरमहाकाव्य आदि कितनेएक ऐतिहासिक काव्य, और प्रबन्धचिंतामणि, प्रबन्धकोश आदि प्रबन्ध ग्रन्थ समय समयपर लिखेगये थे, परन्तु सारा भारतवर्ष एकही प्रबल राजाके अधिकारमें न रहने, और अलग अलग विभागोंपर अनेक स्वतन्त्र राजाओंके राज्य होनेसे ये पुस्तक भी इस विस्तीर्ण देशके बहुत छोटे विभागका थोड़ासा इतिहास प्रकट करनेवाले हैं, सो भी अतिषयोक्तिसे खाली नहीं. तदुपरान्त भाषा कविताके रासा आदि ग्रन्थ, और बड़वा भाटोंके वंशावलीके पुस्तक मिलते हैं, परन्तु ये सब इतिहासकी दृष्टिसे लिखे न जाने, और आधुनिक समयके बने हुए होनेपर भी अधिक प्राचीन दिखलाये जानेके लिये इनमें बहुतसे कृत्रिम नाम भरदेनेसे अधिक उपयोगी नहीं हैं.

बुद्धके समयसे इधरका इतिहास जाननेके लिये धर्मबुद्धिसे अनेक राजवंशी और धनाढ्य पुरुषोंके बनवाये हुए बहुतसे स्तूप, मन्दिर, गुफा, तालाब, वापी आदिपर लगाये हुए, तथा स्तंभ और मूर्तियोंके आसनमें खुदे हुए अनेक लेख; और मन्दिर, विहार, मठ आदिके अर्पण कीहुई अथवा ब्राह्मणादिको दीहुई भूमिके दानपत्र, और अनेक राजाओंके सिक्के बहुतायतके साथ उपलब्ध होनेसे उनके द्वारा, जोकि साम्प्रतकालमें सत्य इतिहास जाननेके मुख्य साधन होगये हैं, बहुत कुछ प्राचीन इतिहास मालूम होसक्ता था, परन्तु उनकी ओर किसीने दृष्टि नहीं दी, और समयानुसार लिपियोंमें फेरफार होते रहनेसे प्राचीन लिपियोंका पढ़ना भी अशक्य होगया, अतएव सत्य इतिहासके ये अमूल्य साधन हरएक प्रदेशमें उपस्थित होनेपर भी निरुपयोगी रहे.

दिल्लीके बादशाह फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ने ई० सन् १३५६ (वि० सं० १४१३) के क़रीब अशोककी धर्माज्ञा खुदा हुआ एक स्तंभ, जिसको फ़ीरोज़शाहकी लाट कहते हैं, यमुनातटसे दिल्लीमें मंगवाया था. उस-पर खुदे हुए लेखका आशय जाननेके लिये बादशाहने बहुतसे विद्वानोंको एकट्ठा किया, परन्तु वे उक्त लेखको न पढ़ सके. ऐसेही कहते हैं, कि बादशाह अक्बरको भी अशोकके लेखोंका आशय जाननेकी बहुत जिज्ञासा रही, परन्तु उस समय एक भी विद्वान ऐसा नहीं था, कि उनको पढ़कर बादशाहकी जिज्ञासा पूर्ण करसक्ता. प्राचीन लिपियोंका पढ़ना भूल जानेके कारण वर्तमान समयमें जब कहीं प्राचीन लेख मिल-जाता है, तो अज्ञ लोग उसको देखकर अनेक कल्पना करते हैं, कोई उसके अक्षरोंको देवताओंके अक्षर बतलाते हैं, कोई गड़े हुए धनका बीजक कहते हैं, और कोई प्राचीन दानपत्र मिलजावे, तो उसको सिद्धिदायक वस्तुमान उसका पूजन करने लगते हैं.

१५० वर्ष पहिले इस देशके प्राचीन इतिहासकी यह दशा थी, कि विक्रम, भोज आदि राजाओंके नाम क़िस्से कहानियोंमें सुनते थे, परन्तु यह कोई नहीं कहसक्ता था, कि भोज किस समय हुआ, और उसके पहिले उस वंशमें कौन कौनसे राजा हुए. भोज प्रबन्धके कर्त्ताको भी यह मालूम नहीं था, कि मुंज सिंधुलका बड़ा भाई था और उसके मरनेपर सिंधुलको राज्य प्राप्त हुआ, क्योंकि उक्त पुस्तकमें सिंधुलके मरनेपर मुंजका राजा होना लिखा है, तो विचारना चाहिये, कि उस समय सामान्य लोगोंको इतिहासका ज्ञान कितना होगा, जिसका अनुमान पाठक स्वयं करसक्ते हैं.

भारतवर्षमें अंग्रेजोंका राज्य होनेपर फिर विद्याका प्रचार हुआ, और इतिहासकी अपूर्णता मिटानेके लिये लेख आदिकी क़द्र होने लगी. सन् १७८४ ई० में सर विलियम जोन्सके यत्नसे एशिया खण्डके इतिहास, शिल्प, साहित्य आदिका शोध करनेके लिये एशियाटिक सोसाइटी नामका समाज कलकत्ता नगरमें कायम हुआ, और उक्त समाजके जर्नलों (सामाजिक पुस्तकों) में अन्य अन्य विषयोंके साथ प्राचीन लेख, दानपत्र और सिक्के भी समय समयपर प्रसिद्ध होने लगे. कितनेएक वर्षोंके बाद लण्डन नगरमें 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' कायम हुई, और उसकी शाखा बम्बई और सीलोनमें भी स्थापित हुई. ऐसेही समय समयपर जर्मन, फ्रान्स, इटली आदि युरोपके अन्य देशों तथा अमेरिकामें भी एशिया खण्ड सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयोंके शोधके लिये समाज कायम हुए, और उनके सामाजिक पुस्तकोंमें समय समयपर यहांके अनेक लेख, दानपत्र और सिक्के प्रकट होने लगे. भारतवर्षकी गवर्मेंटने भी प्राचीन शोधके निमित्त प्रत्येक अहातेमें 'आर्कियालॉजिकल सर्वे' नामके महकमे कायम किये, जिनकी रिपोर्टोंसे भी अनेक प्राचीन लेख, दानपत्र और सिक्के प्रसिद्धिमें आये. इसी उद्देशसे डॉक्टर बर्जेसने 'इण्डियन एण्टिकेरी' नामका एक मासिक पत्र ई० सन् १८७२ से निकालना प्रारम्भ किया, जिसमें अबतक बहुतसे लेख आदि छपते ही जाते हैं. ई० सन् १८७९ में गवर्मेंटके लिये जेनरल कनिंगहामने अशोकके समयके समस्त लेखोंका एक उत्तम पुस्तक प्रसिद्ध किया, और ई० सन् १८८८ में फ्लीट साहिबने गुप्त और उनके समकालीन राजाओंके लेखोंका एक अत्युत्तम पुस्तक तय्यार किया. ई० सन् १८८८ से 'एपिग्राफिया इण्डिका' नामका एक त्रैमासिक पुस्तक भी केवल प्राचीन लेख और दानपत्रोंको प्रसिद्ध करनेके निमित्त गवर्मेंटकी ओरसे छपने लगा. इनके अतिरिक्त अनेक दूसरे पुस्तकोंमें भी कितने ही लेख, दानपत्र और सिक्के छपे हैं, जिनसे मौर्य (मोरी), तुरुष्क, क्षत्रप, गुप्त, हूण, लिच्छवि, मौखरी, बैश, गुहिल, परिव्राजक, यौधेय, प्रतिहार (पडिहार), राष्ट्रकूट (राठौड़), परमार, चालुक्य (सोलंखी), व्याघ्रपल्ली (बाघेला), चौहान, कच्छपघात (कछावा), तोमर (तंवर), कलचुरि, चंद्रात्रेय (चन्देला), यादव, पाल, सेन, गुर्जर (गूजर), मेहर, शातकर्णी (आंध्रभृत्य), अभीर, सुंग, पल्लव, कदंब, शिलारा, सेंद्रक, काकत्य, नागवंशी, शूरसेनवंशी, निकुम्भवंशी, गंगावंशी, बाणवंशी, सिंदवंशी आदि अनेक राजवंशियोंका बहुत कुछ इतिहास प्रकट हुआ है, परन्तु हमारे बहुतसे स्वदेशी बांधव, जो अंग्रेजी नहीं जानते, वे उक्त

लेख आदिके अंग्रेज़ी पुस्तकोंमें ही छपनेके कारण उनसे कुछ लाभ नहीं उठासक्ते, और प्राचीन लिपियोंका बोध न होनेके कारण न उनको पढ़सक्ते हैं. प्राचीन लिपियोंका बोध होनेके लिये आज तक कोई ऐसा पुस्तक स्वदेशी भाषामें नहीं बना, कि जिसको पढकर सर्व साधारण लोग भी अपने देशके प्राचीन लेख आदिका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके अतिरिक्त यह जानसकें, कि देशकी प्रचलित देवनागरी, शारदा, गुरुमुखी, बंगला, गुजराती, महाराष्ट्री, कनडी आदि लिपियें पहिले किस रूपमें थीं, और उनमें कैसा कैसा परिवर्त्तन होते होते वर्तमान रूपको पहुंची हैं. यह अभाव दूर करनेके लिये 'प्राचीन लिपिमाला' नामका यह छोटासा पुस्तक लिखकर अपने देश बंधुओंकी सेवामें अर्पण करता हूं, और आशा रखता हूं, कि सज्जन पुरुष इसको पढकर मेरा श्रम सफल करेंगे.

इस पुस्तकका क्रम ऐसा रक्खा है, कि लिपिपत्रोंके पहिले इसमें कितनेएक लेख, जैसे कि भारतवर्षमें लिखनेका प्रचार प्राचीन समयसे होना, पाली और गांधार लिपियोंकी उत्पत्ति, और भूली हुई प्राचीन लिपियोंका फिरसे पढेजानेका संक्षेप हाल, लिखकर प्राचीन लेख और दानपत्रोंमें पाये जाने वाले सप्तर्षि संवत्, कलियुग संवत् (युधिष्ठिर संवत्), बुद्धनिर्वाण संवत्, मौर्य संवत्, विक्रम संवत् (१), शक संवत्, चेदि संवत्, गुप्त या वल्लभी संवत्, श्रीहर्ष संवत्, गांगेय संवत्, नेवार संवत्, चालुक्यविक्रम संवत्, लक्ष्मणसेन संवत्, सिंह संवत् और कोलम संवत्के प्रारम्भ आदिका वृत्तान्त संक्षेपसे लिखा है, जिसका जानना प्राचीन लेखोंके अभ्यासियोंको आवश्यक है. तदनन्तर प्राचीन अंकोंका सविस्तर हाल लिख हरएक लिपिपत्रका संक्षेपसे वर्णन किया है.

अन्तमें ५२ लिपिपत्र (प्लेट) दिये हैं, जिनमेंसे १ से ३७ तकमें भारतवर्षके भिन्न भिन्न विभागोंसे मिले हुए समय समयके लेख और दानपत्रोंसे वर्णमाला तय्यार की हैं. इन लिपिपत्रोंके बनानेमें क्रम ऐसा रक्खा गया है, कि प्रथम स्वर, फिर व्यंजन, तत्पश्चात् स्वर मिलित व्यंजन और अन्तमें संयुक्ताक्षर सम्पूर्ण लेख या दानपत्रसे छांटकर दिये हैं, और उनपर वर्तमान देवनागरी अक्षर रक्खे हैं. जहां एकही अक्षर

---

(१) इस पुस्तकमें जहां जहां 'विक्रम संवत्' लिखा है, उसको चैत्रादि विक्रम संवत् समझना चाहिये.

दो या अधिक प्रकारसे लिखा है, वहां केवल पहिलेके ऊपर देवनागरी अक्षर लिख दिया है, जैसा कि लिपिपत्र पहिलेमें 'अ' दो प्रकारका है, वहां पहिलेके ऊपर देवनागरीका 'अ' लिख दूसरेको खाली छोड़ दिया है. अन्तमें ४ या ५ पंक्तियें जिस लेख (१) या दानपत्रसे लिपि तय्यार कीगई है, उसमेंसे चाहे जहांसे देदी हैं. इन अस्ली पंक्तियोंका नागरी अक्षरान्तर, जहां लिपिपत्रोंका वर्णन है, कुछ बड़े अक्षरोंमें छपवा दिया है, जिसमें ऐसा नियम रक्खा है, कि अस्लमें कोई अशुद्धि है, तो उसका शुद्ध रूप (   ) में रख दिया है, और कोई अक्षर छूटगया है, उसको [   ] में लिखदिया है.

लिपिपत्र ३८ और ३९ में प्राचीन तामिळ लिपिकी वर्णमाला मात्र बनादी हैं. लिपिपत्र ४० में भिन्न भिन्न लेख और दानपत्रोंसे छांटकर ऐसी संख्या दी हैं, जो शब्द और अंक दोनोंमें लिखी हुई मिली हैं.

लिपिपत्र ४१, ४२ व ४३ में प्राचीन अंक, और ४४ से ५० तकमें भारत-वर्षकी वर्त्तमान लिपियें दर्जकी हैं. लिपिपत्र ५१ में अशोकके समयकी लिपिमें क्रम क्रमसे परिवर्त्तन होते हुए वर्तमान देवनागरी लिपिका बनना बतलाया है, और ५२ में कई लेख, दानपत्र और सिक्कोंसे छांटकर कितने-एक अक्षर लिखे हैं, जो लिपिपत्र १ से ३९ तकमें नहीं आये.

प्रथम ऐसा विचार था, कि ऊपर वर्णन किये हुए प्रसिद्ध प्राचीन राजवंशियोंका संक्षेपसे इतिहास भी इस पुस्तकमें लिखा जावे, परन्तु लिपियोंके साथ इतिहासका सम्बन्ध न रहने, और ग्रन्थ बढ़जानेके भयसे भी उसका लिखना उचित नहीं समझा. यदि साधन और समय अनुकूल हुआ, तो इस विषयका एक पृथक् पुस्तक लिखकर सज्जनोंकी सेवामें अर्पण करूंगा.

इतिहास प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजाओंकी मुख्य राजधानी उदयपुर नगर-में श्रीमन्महिमहेन्द्र यावदार्यकुलकमलदिवाकर महाराणाजी श्री १०८ श्री फ़तहसिंहजी धीरवीरकी आज्ञानुसार महामहोपाध्याय कविराज श्री श्यामलदासजीने राजपूताना आदिका 'वीरविनोद' नामका बड़ा इति-हास निर्माण किया, और उक्त इतिहास सम्बन्धी कार्यालयका सेक्रेटरी मुझे नियत किया, जिससे ऐतिहासिक ज्ञान संपादन करनेके उपरान्त प्राचीन लेख पढ़नेका अभ्यास, जो मैंने अपनी जन्मभूमि ग्राम रोहिडा इलाके सिरोहीसे बम्बई जाकर प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता पण्डित भगवानलाल

(१) इस पुस्तकमें शिला लेखके वास्ते 'लेख' शब्द रक्खा है.

इन्द्रजीसे किया था, पढ़ानेका अवसर मिला, जिसका मुख्य कारण कविराजजीकी गुण ग्राहकता थी. उक्त कविराजजीकी इच्छानुसार मैंने यह पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया था, परन्तु खेदका विषय है, कि इस ग्रन्थके पूर्ण होनेके पहिले ही उनका परलोकवास होगया.

इस पुस्तकके तय्यार करनेमें लाला सोहनलालजीने लिपिपत्र लिखकर, जोधपुर निवासी मुनशी देवीप्रसादजीने तथा कविराजा मुरारीदानजीके पुत्र गणेशदानजीने मारवाड़के कितनेएक लेखोंकी छापें भेजकर और सज्जनयन्त्रालयके मैनेजर आशिया चालकदानजीने अपने सुप्रबन्धसे इस पुस्तकको शीघ्र और शुद्ध छपवा कर, जो सहायता दी है, उसके लिये मैं इन महाशयोंको और अन्य मित्रोंको, जिन्होंने इस कार्यमें उत्तम सलाह और सहायता दी है, धन्यवाद देता हूं. ऐसेही अंग्रेज़ी, संस्कृत आदि अनेक ग्रन्थ, जिनसे मुझे सहायता मिली है, और जिनके नाम यथास्थान नोटमें लिखे हैं, उनके कर्ताओंका भी मैं आभारी हूं.

विक्टोरियाहॉल, उदयपुर,
वि० सं० १९५१ श्रावण शुक्ला ६,
ता० ७ ऑगस्ट सन् १८९४ ई० } गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

सूचीपत्र.

ॐ

प्राचीन लिपिमाला.

भारतवर्षमें लिखनेका प्रचार प्राचीन समयसे चला आता है.

यह बात तो निर्विवाद है, कि प्राचीन समयमें भारतवर्ष निवासी ऋषि मुनि आदि आर्य लोगोंने विद्या विषयमें जितनी उन्नति की थी उतनी किसी अन्य देश वासियोंने उस समय नहीं की, परन्तु कितनेएक आधुनिक यूरोपिअन् विद्वान् और हमारे यहांके राजा शिवप्रसादका (१) कथन है, कि आर्य लोग प्राचीन समयमें लिखना नहीं जानते थे; पठन पाठन केवल कथन श्रवण द्वारा होता था. प्रोफ़ेसर मैक्सम्यूलर तो यहां तक कहते हैं, कि पाणिनिके व्याकरण अष्टाध्यायीमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है (२), कि जिससे उक्त पुस्तककी रचनाके समयतक लिखनेका प्रचार पाया जावे; और प्रसिद्ध प्राचीन शोधक बर्नेल साहिबने निश्चय किया है, कि सन् ई० से ४०० वर्ष पहिले ही आर्य लोगोंने विदेशियोंसे लिखना सीखा था (३).

भारतवर्षके प्राचीन लेख, और उनसे बहुत पहिले बने हुए ग्रन्थोंको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि इन विद्वानोंके अनुमान किये हुए समय से बहुत पहिले इस देशमें लिखनेका प्रचार था.

काग़ज़ (४), भोजपत्र (५), या ताड़पत्र (६) पर लिखे हुए पुस्तक

---

(१) इतिहास तिमिरनाशक (खण्ड ३ रा).

(२) हिस्टरी आफ़ एन्श्यंट संस्कृत लिटरेचर (पृष्ठ ५०७).

(३) साउथ इंडिअन पेलीओग्राफ़ी (पृष्ठ ६).

(४) कागज़पर लिखे हुए सबसे पुराने भारतवर्षकी नागरी लिपिके ४ संस्कृत पुस्तक मध्य एशियामें यारकन्द नगरसे ६० मील दक्षिण "कुगिअर" स्थानमें ज़मीनसे निकले हुए वेबर साहिबको मिले हैं, जिनका समय प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर हौर्नली साहिबने सन् ई० की पांचवीं शताब्दी अनुमान किया है (बंगालकी एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल जिल्द ६२, पृष्ठ ८).

(५) भोजपत्रपर लिखा हुआ सबसे पुराना संस्कृत पुस्तक पूर्वी तुर्किस्तानमें "कुचार" स्थानके पास ज़मीनसे निकला हुआ बावर साहिबको मिला है, जिसका समय भी सन् ई० की पांचवीं शताब्दी अनुमान किया गया है. यह पुस्तक गवर्मेंटकी तरफ़से डाक्टर हौर्नली छपवा रहे हैं, इसका पहिला हिस्सह सन् १८९३ ई० में छपचुका है.

(६) विक्रम संवत् ११८६ का ताड़पत्रपर लिखा हुआ "आवश्यक सूत्र" नामका जैन ग्रन्थ प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर बुलरको मिला है (सन् १८७२-३ ई० की रिपोर्ट).

हज़ारों वर्षतक नहीं रहसक्के, परन्तु उत्तम प्रकारके पत्थर या धातुपर खुदे हुए अक्षर यत्न पूर्वक रक्खे जावें, तो बहुत वर्षोंतक बच सके हैं. भारतवर्षमें सबसे प्राचीन लेख जो आजतक पाये गये हैं, वे चट्टान और पाषाण के स्तम्भोंपर खुदी हुई मौर्य वंशी राजा अशोक (प्रियदर्शी) की धर्माज्ञा हैं, जो पेशावरसे माइसौरतक, और काठियावाड़से उड़ीसातक कई एक स्थानों (१) में मिली हैं.

अशोक का राज्याभिषेक सन् ई० से करीबन् २६९ वर्ष पहिले हुआ था, और ये धर्माज्ञा राज्याभिषेक होनेके पश्चात् १३ वें वर्ष से २८ वें वर्ष के बीच समय समय पर लिखी गई थीं. शहबाज़गिरि और मान्सेराकी धर्माज्ञा गांधार लिपिमें खुदी हैं, जो फ़ार्सीकी नाईं दाहिनी ओरसे बाईं ओरको पढ़ी जाती है; इनके अतिरिक्त सर्वत्र पाली अर्थात् राजा अशोकके समयकी प्रचलित देवनागरी लिपिमें हैं. प्रजाको राजकीय आज्ञाकी सूचनाके निमित्त वर्तमान समयमें जैसे गवर्मेण्ट या राजाओंकी तरफ़से भिन्न भिन्न स्थानोंपर इश्तिहार लगाये जाते हैं, वैसेही ये धर्माज्ञा भी हैं; परन्तु चिरस्थायी रखनेके लिये वे कठिन पाषाणोंपर खुदवाई गई हैं. उनकी भाषा सर्वत्र एक नहीं, किन्तु वे स्थान स्थानकी प्रचलित देशी (प्राकृत) भाषामें लिखी गई हैं, जिसका यह कारण होगा, कि हरएक देशकी प्रजा अपनी अपनी मातृ भाषा होनेसे उनको पढ़कर सुगमतासे उन्हें समझ सके, और आज्ञानुसार धर्माचरण करे. इन आज्ञाओं के पढ़नेसे यह भी मालूम होता है, कि देवनागरीकी वर्णमाला उस समय में भी ऐसीही सम्पूर्ण थी, जैसी कि आज है, तो स्पष्ट है कि सन् ई० से क़रीबन् २५६ वर्ष पहिले भी क़रीब क़रीब सारे भारतवर्षमें लिखने पढ़नेका प्रचार भली भांति था.

बर्नेल साहिबके निश्चय किये हुए समय और इन लेखोंके समयमें केवल १४४ वर्षका अन्तर है. जिस समय एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेको

---

(१) शहबाज़गिरि (पंजाबके ज़िले यूसुफ़ज़ईमें), मान्सेरा (सिन्धु नदीके पूर्व ओर पंजाबमें), खालसी (पश्चिमोत्तर देशके ज़िले देहरादूनमें), दिल्ली, बैराट (राजपूतानहमें), लौरिया अरराज अथवा रधिया, और लौरिया नवन्दगढ़ अथवा मथिया (चम्पारन ज़िला बंगालमें), रामपुरवा (तराई ज़िला चम्पारनमें); बैराट (नयपालकी तहसील बहादुरगंजमें), इलाहाबाद, सहस्राम (बंगालके ज़िले शाहाबादमें), रूपनाथ (मध्य प्रदेश के ज़िले जबलपुरमें), सांची (मध्य प्रदेशके भोपाल राज्यमें), गिरनार (काठियावाड़में), सोपारा (बम्बई नगर से ३७ मील उत्तरमें), धौली (उड़ीसाके ज़िले कटकमें), जौगढ़ (मद्रास प्रान्तके गंजाम ज़िलेमें), और माइसौर में ये धर्माज्ञा मिली हैं.

रल जैसे साधन न थे, ऐसी दशामें भारतवर्ष जैसे अति विस्तीर्ण देशमें केवल १४४ वर्षके भीतर लिखने पढ़नेका प्रचार भली भांति सर्व देशी होजाना, और देवनागरीकी वर्णमालाका भूमण्डलकी समस्त लिपियों-की वर्णमालाओंसे अधिक सरलता और सम्पूर्णताको पहुंचना सम्भव नहीं है.

सांचीके एक स्तूप (१) में से पत्थरके दो गोल डिब्बे (२) मिले हैं, जिनमें "सारिपुत्र" और "महामोगलान" की हड्डियां निकली हैं. एक डिब्बेके ढक्कनपर "सारिपुतस" (सारिपुत्रस्य) खुदा है, और भीतर सारिपुत्रके नामका पहिला अक्षर "सा" स्याहीसे लिखा हुआ है. दूसरेके ढक्कनपर "महामोगलानस" (महामौद्गलायनस्य) खुदा है, और भीतर "म" अक्षर स्याहीका लिखा हुआ है. बौद्धोंके पुस्तकोंसे पाया जाता है, कि सारिपुत्र और मोगलान दोनों बुद्ध (शाक्यमुनि) के मुख्य शिष्य थे. सारिपुत्रका देहान्त बुद्धकी मौजूदगीमें होगया था, और मोगलानका बुद्धके निर्वाणके बाद. यह स्तूप सन् ई० से पूर्व २५० वर्षसे भी पहिलेका बना हुआ है. उस समयके लिखे हुए स्याहीके अक्षर मिलनेसे निश्चित है, कि इस देशमें लिखनेके साधन पहिलेसे मौजूद थे.

अशोकके दादा चन्द्रगुप्तके दर्बारमें सिरिआके राजा सेल्युकसका वकील मेगस्थनीस ई० सन् से ३०६ वर्ष पहिले आया था; वह लिख गया है, कि इस देश (भारतवर्ष) में नये वर्षके दिन पंचाङ्ग सुनाया जाता है (३), जन्मपत्र बनानेके लिये बालकोंका जन्म समय लिखा जाता है (४), और दस दस स्टेडिआ (५) के अन्तरपर कोसोंके पाषाण लगे हैं, जिनपरके

---

(१) "स्तूप" बौद्ध धर्मावलम्बियोंका एक पवित्र स्थान मानाजाता है, जिसकी आकृति उल्टे घण्टेके समान अथवा गुम्मटसे मिलती जुलती होती है. प्राचीन समयमें बौद्ध लोग बुद्धकी अथवा अपने किसी बड़े प्रसिद्ध धर्मोपदेशककी हड्डी वगैरा पर स्मारक चिन्हके निमित्त ऐसे स्तूप बनवाते थे, और इसको एक बड़ा पुण्यका काम मानते थे. जब किसी राजा या धनाढ्यकी तरफ़ से बड़ा स्तूप बनाया जाता तो उसके खात मुहूर्तपर बड़ा उत्सव होता था, और देश देशान्तरके बौद्ध धर्मावलम्बी, और धर्मोपदेशक लोग उस उत्सवपर एकत्र होते थे, जैसे कि हमारे यहांके मन्दिरोंमें मूर्ति प्रतिष्ठाके समय एकत्र होते हैं. भारतवर्षमें समय समयपर बने हुए अनेक स्तूप पाये गये हैं.

(२) भिलसा टोप्स (पृ० २९५-३०८).

(३) मेगस्थनीस इंडिका (पृ० ९१).

(४) " (पृ० १२६).

(५) एक स्टेडिअम् ६०६ फ़ीट और ९ इंच का होता है.

लेखोंसे आराम स्थान (सराय) और दूरीका पता लग सका (१) हैं.

सन् .ई० से ३२७ वर्ष पहिले यूनानके बादशाह सिकन्दरने इस देशपर हमला किया और सिन्धु नदीको पारकर आगे बढ़ आया था. उसके जहाज़ी सेनापति निआर्कसने लिखा है, कि यहांके लोग रुईको कूट कूट कर लिखनेके लिये काग़ज़ बनाते हैं.

" ललित विस्तर " ग्रन्थमें बुद्धका लिपिशालामें जाकर विश्वामित्र अध्यापकसे चन्दनकी पाटीपर स्याहीसे लिखना सीखनेका (२) वर्णन है. इस ग्रन्थका चीनी भाषामें अनुवाद .ई० सन् ७६ में हुआ था, जिससे इस ग्रन्थके प्राचीन होने, और इसके अनुसार बुद्धके समयमें लिपिशालाओंके होनेमें सन्देह नहीं है. बुद्धके निर्वाणका समय भारतवर्षके प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता जेनरल कनिंगहामने .ई० सन् से ४७८ वर्ष पहिलेका निश्चय किया है.

बुद्धसे पहिले पाणिनिने व्याकरणका ग्रन्थ अष्टाध्यायी लिखा था, जिसमें "लिपि" और "लिबि" (३) शब्द दिये हैं, जिनका अर्थ "लिखना" (४) होता है, और " लिपिकर " (लिखनेवाला) शब्द बनानेके लिये नियम लिखा है (३). ऐसेही " यवनानी " (५) शब्द भी दिया है, जिसका अर्थ कात्यायन और पतञ्जलिने " यवनोंकी लिपि " किया है, इससे स्पष्ट है, कि पाणिनिके समयमें यवनोंकी लिपि आर्य लिपिसे भिन्न थी. उसी अष्टाध्यायीमें "ग्रन्थ" (६) (पुस्तक वा किताब) शब्द, लिङ्गानुशासनमें " पुस्तक " (७) शब्द, और धातुपाठमें (८) " लिख " (९) (अक्षर लिखना) धातु भी दिया है. इनके अतिरिक्त " रेफ " (अर्धरकारका चिन्ह, जो अक्षरके ऊपर लगाया जाता है) और स्वरित (१०)

---

(१) मेगस्थनीस इंडिका (पृ० १२५-२६).

(२) ललित विस्तर अध्याय १० वां (अंग्रेजी अनुवाद पृ० १८१-८५).

(३) दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलि० (३।२।२१).

(४) लिपिंकरो ऽक्षरचणो ऽक्षरचुञ्चुश्च लेखके ॥ लिखिताक्षरविन्यासे लिपिर्लिबिरुभे स्त्रियौ ॥ (अमरकोश, काण्ड २, क्षत्र वर्ग १५।१६).

(५) इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवन० (४।१।४९).

(६) समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे (१।३।७५). अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (४।३।८७). कृते ग्रन्थे (४।३।११६).

(७) कण्टकानीकसरकमोदकचषकमस्तकपुस्तक० (पुल्लिङ्ग सूत्र २९).

(८) लिख अक्षरविन्यासे (तुदादिगण).

(९) लिङ्गानुशासन और धातुपाठ भी पाणिनिके बनाये माने जाते हैं.

(१०) स्वरितेनाधिकारः (१।३।११).

के चिन्हका भी उल्लेख किया है. रेफ और स्वरितके चिन्ह लिखे हुए अक्षरोंपर ही लगसक्ते हैं. अष्टाध्यायीके छठे अध्यायके ३ रे पादके ११५ वें सूत्रसे ऐसा पायाजाता है, कि पाणिनिके समयमें चौपायोंके कानपर ५ व ८ के अंक, और स्वास्तिक (साथिया) आदि चिन्ह (१) किये जाते थे. उसी ग्रन्थसे यह भी मालूम होता है, कि उस समयमें "महाभारत" (२) और आपिशलि (३), स्फोटायन (४), गार्ग्य (५), शाकल्य (६), शाकटायन (७), गालव (८), भारद्वाज (९), और काश्यप (१०) प्रणीत व्याकरणके ग्रन्थ भी उपलब्ध थे, क्योंकि इन ग्रन्थोंमेंसे पाणिनिने नियम उद्धृत किये हैं. वेदोंके पुस्तक भी पाणिनिके समयमें मौजूद होंगे, क्योंकि अष्टाध्यायीके ७ वें अध्यायके पहिले पादका ७६ वां सूत्र "छन्दस्यपिदृश्यते" (वेदोंमें भी दीख पड़ता है) है; "दृश्" (देखना) धातुका प्रयोग, जो वस्तु देखी जाती है, उसके लिये होता है, इसवास्ते इस सूत्रका तात्पर्य वेदके लिखित पुस्तकोंसे है.

ब्राह्मण ग्रन्थोंमें "काण्ड" और "पटल" शब्द मिलते हैं, जिनका अर्थ "पुस्तक विभाग" है. ये शब्द ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचनाके समयमें भी पुस्तकोंका होना बतलाते हैं.

शतपथ ब्राह्मण (११) में लिखा है, कि "तीनों वेदोंमें इतनी पंक्तियां दोबारह हैं, जितने एक वर्षमें मुहूर्त होते हैं". एक वर्षके ३६० दिन, और एक दिनमें ३० मुहूर्त होते हैं, इसलिये एक वर्षमें ३६०×३० = १०८०० मुहूर्त होते हैं, अर्थात् तीनों वेदोंमें १०८०० पंक्तियां दोबारह हैं. इतनी पंक्तियोंकी गणना उस हालतमें होसक्ती है, जब कि तीनों वेदोंके लिखित पुस्तक पास हों.

---

(१) कर्णो लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य (६।३।११५).

(२) महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारत० (६।२।३८).

(३) वासुप्यापिशलेः (६।१।९२).

(४) अवङ् स्फोटायनस्य (६।१।१२३).

(५) ओतोगार्ग्यस्य (८।३।२०).

(६) लोपः शाकल्यस्य (८।३।१९).

(७) लङः शाकटायनस्यैव (३।४।१११). मद्रास प्रेसिडेन्सी कालेजके प्रधान संस्कृत अध्यापक डाक्टर आपर्टने शाकटायनका व्याकरण अभयचन्द्रसूरीकी टीका सहित छपवाया है,

(८) इकोह्रस्वोऽङ्योगालवस्य (६।३।६१).

(९) ऋतो भारद्वाजस्य (७।२।६३).

(१०) तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य (१।२।२५).

(११) शतपथ ब्राह्मण काण्ड १० वां (पृ० ७८६).

यजुर्वेदमें (१) एकसे लगाकर परार्धतककी संख्या दी है, जिसपर विद्वान् लोग विचार करसक्ते हैं, कि अंकविद्या न जानने वालोंको इतनी संख्याका बोध होना कैसे सम्भव होसक्ता है? ग्रीक लोग जब लिखनेसे अज्ञ थे तब वे अधिकसे अधिक १०००० तक संख्या जानते थे. इसी प्रकार रोमन लोग उक्त दशामें केवल १००० तक जानते थे, और यदि आज भी देखाजावे, तो जो जातियां लिखना नहीं जानतीं, उनमें १००००० तककी गिनती भली भांति जानना दुस्तर है.

लिखना न जाननेकी दशामें भी छन्दो बद्ध ग्रन्थ बनसक्ते, और बहुत समयतक कण्ठस्थ रहसक्ते हैं, परन्तु ऐसी दशामें गद्यका पुस्तक बनही नहीं सक्ता, क्यौंकि गद्यका पुस्तक रचनेके लिये कर्ताको अपना आशय क्रम पूर्वक लिखना पड़ता है, यदि ऐसा न कियाजावे, तो पहिले दिन अपना आशय जिन शब्दोंमें प्रकट किया हो, ठीक वेही शब्द दूसरे दिन याद नहीं रहसक्ते. कोई व्याख्यान दाता शब्दशः अपना व्याख्यान उसी दिन पीछा नहीं लिखा सक्ता, तो विना लिखना जाननेके ग्रन्थके ग्रन्थ गद्यमें बनाना, और वर्षौंतक उनको शब्दशः याद रखलेना क्यौंकर सम्भव होसक्ता है? प्राचीन समयमें यहां लिखनेका प्रचार भली भांति होनेका सुबूत गद्यके पुस्तक देते हैं. वैदिक पुस्तकोंमें बहुतसा हिस्सह गद्य होनेसे स्पष्ट है, कि उनके बननेके समयमें लिखनेका प्रचार अवश्य था.

ऊपर लिखे हुए प्रमाणोंसे भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे लिखनेका प्रचार होना स्पष्ट पायाजाता है. इनके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, पुराण आदि अनेक पुस्तकोंमें इस विषयके कई प्रमाण मिलते हैं, परन्तु विस्तारके भयसे यहांपर नहीं लिखेगये.

प्रोफ़ेसर रॉथने वेदोंका अभ्यास करके इस विषयमें अपनी यह अनुमति प्रकट की है, कि लिखनेका प्रचार भारतवर्षमें प्राचीन समयसे ही होना चाहिये, क्यौंकि यदि वेदोंके लिखित पुस्तक मौजूद न होते, तो कोई पुरुष प्रातिशाख्य न बनासक्ता.

गोल्डस्टूकर (२) साहिबने भी प्राचीन समयमें लिखनेका प्रचार होना प्रकट किया है.

---

(१) इमा मे ऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे ऽअग्नऽ इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके (शुक्लयजुर्वेद संहिता १७।२).

(२) मानवकल्पसूत्रकी अंग्रेज़ी भूमिका (पृ० १५).

"पाली" (१) लिपि आर्य लोगोंनेही निर्माण की है.
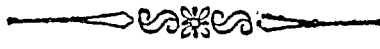
भारतवर्षके प्राचीन लेख और सिक्कोंसे पायाजाता है, कि इस देशमें पहिले दो लिपि प्रचलित थीं, अर्थात् "गांधार" और "पाली". गांधार देशके (२) सिवा सर्वत्र पालीका प्रचार होने, और उसीसे बहुधा इस देशकी समस्त प्राचीन और वर्तमान लिपियोंके बननेके कारण यहांकी मुख्य लिपि "पाली" ही मानना चाहिये.

जब कितनेएक यूरोपिअन विद्वानोंने यह प्रकट किया, कि आर्य लोग पहिले लिखना नहीं जानते थे, तो यह भी शंका होनेलगी, कि राजा अशोककी धर्माज्ञाओंमें जो "पाली" लिपि मिलती है, वह आर्य लोगोंने ही निर्माण की है, या अन्य देश वासियोंसे सीखी है.

इस विषयमें आर० एन० कस्ट साहिब (३) लिखते हैं, कि एशिया खण्डके पश्चिममें रहनेवाले फ़िनीशियन लोग सन् .ई० से ८०० वर्ष पहिले भली भांति लिखनेकी विद्या जानते थे, उनका वाणिज्य सम्बन्ध इस देशके साथ रहने, तथा उन्हींके अक्षरोंसे ग्रीक (यूनानी), रोमन, व सेमिटिक (४) भाषाओंके अक्षर बननेसे अनुमान होता है, कि पाली अक्षर भी फ़िनीशियन अक्षरोंसे बने होंगे.

सर विलिअम् जोन्स, प्रोफ़ेसर कॉप्प, प्रोफ़ेसर लिप्सिस, डॉक्टर जिस्लर और ई० सेनार्ट आदि विद्वान् भी सेमिटिक् अक्षरोंसेही हमारे यहांके अक्षरोंका बनना बतलाते हैं

---

(१) राजा अशोककी धर्माज्ञाओंकी भाषा पाली भाषासे मिलती हुई होनेके कारण उनकी लिपिका नाम "पाली" रक्खा गया है, वास्तवमें यह लिपि देवनागरीका पूर्व रूपही है, परन्तु "पाली" नाम प्रसिद्ध होगया है, इसलिये यहांपर भी यही नाम रक्खा है, इस लिपिको "इंडियन पाली" "साउथ (दक्षिणी) अशोक" और "लाट" लिपि भी कहते हैं- (इस लिपिके वास्ते देखो लिपिपत्र पहिला).

(२) अफ़ग़ानिस्तान और पश्चिमी पंजाब दोनों मिलकर गांधारदेश कहलाता था, इस समय अफ़ग़ानिस्तान भारतवर्षसे अलग है, परन्तु प्राचीन समयमें यह भी इसीमें शामिल था.

(३) रायल एशियाटिक् सोसाइटीका जर्नल (जिल्द १६, पृष्ठ ३२९, ३५९).

(४) हिब्रु, फ़िनीशियन, अरामिअन, आसीरिअन, अरबी, एथिओपिक् आदि पश्चिमी एशिया और आफ्रिका खण्डकी भाषाओंको "सेमिटिक" अर्थात् "नूह" के पुत्र "शेम" की सन्ततिकी भाषा कहते हैं.

डॉक्टर ऑटफ्रिड मूलरका अनुमान है, कि सिकन्दरके समयमें यूनानी लोग हिन्दुस्तानमें आये, उनसे भारतवासियोंने अक्षर सीखे हैं.

डॉक्टर स्टिवन्सन (१) का अनुमान है, कि हिन्दुस्तानके अक्षर या तो फ़िनीशियन या मिस्र देशके अक्षरोंसे बने हैं.

डॉक्टर पॉल गोल्डस्मिथ (२) लिखते हैं, कि फ़िनीशियन अक्षरोंसे सीलोन (सिंहलद्वीप या लंका) के अक्षर बने, और उनसे हिन्दुस्तानके; लेकिन् डॉक्टर ई० म्युलर (३) का कथन है, कि सीलोनमें लिखनेका प्रचार होनेके पहिलेसे हिन्दुस्तानमें लिखनेका प्रचार था.

बर्नेल (४) साहिबने यह निश्चय किया है, कि फ़िनीशियनसे निकले हुए "अरामिअन" अक्षरोंसे पाली अक्षर बने हैं; लेकिन् आइज़क टेलर (५) लिखते हैं, कि अरामिअन और पाली अक्षर परस्पर नहीं मिलते.

एम० लेनोर्मंट कहते हैं, (६) कि फ़िनीशियन अक्षरोंसे अरबके हिम्यारिटिक् अक्षर और उनसे पाली अक्षर बने हैं.

इस प्रकार कईएक यूरोपिअन विद्वान् पाली अक्षरोंकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक कल्पना करते हैं, परन्तु किसीने भी फ़िनीशियन, अरामिअन, हिम्यारिटिक् आदि लिपियोंसे ऐसे पांच दश अक्षर भी नहीं बतलाये, जो उन्हीं उच्चारणवाले पाली अक्षरोंसे मिलते हों.

प्रगट है, कि किसी दो भाषाओंकी वर्णमालाओंको मिलाकर देखा जावे, तो दो चार या अधिक अक्षरोंकी आकृति परस्पर मिलही जाती है, चाहे उच्चारणमें अन्तर हो. जैसे पालीको उर्दूसे मिलावें, तो "र" ا (अलिफ़) से, "ज" ع (ऐन) से, और "ल" ل (लाम) से मिलते जुलते मालूम होते हैं. ऐसे ही अंग्रेज़ी अक्षरोंको पालीसे मिलावें, तो A (ए) "ग" से, D (डी) "ध" से, E (ई) "ज" से, I (आइ) "र" से, J (जे) "ल" से, L (एल) "उ" से, O (ओ) "ठ" से, T (टी-उलटा ⊥) "न" से, U (यू) "प" से, X (एक्स)

(१) बौम्बे ब्रैंच रायल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल (जिल्द ३, पृ० ७५).

(२) अकेडेमी (सन् १८७७ ता० ८ जन्वरी).

(३) रिपोर्ट आन एन्श्यंट इन्स्क्रिपशन्स आफ़ सीलोन (पृ० २४).

(४) साउथ इण्डियन पेलिओग्राफ़ी (पृ० ८).

(५) आल्फ़ाबेट (जिल्द २, पृ० ३१२).

(६) ऐसे आन फ़िनीशियन आल्फ़ाबेट (जिल्द १, पृ० १५०).

" क " से, और Z (ज़ेड्) " ओ " से (१) बहुत कुछ मिलता है. इस प्रकार उर्दूके ३, और अंग्रेज़ीके ११ अक्षर पालीसे मिलनेपर भी हम यह नहीं कहसक्ते, कि उर्दू अथवा अंग्रेज़ीसे पाली अक्षर बने हैं, या पालीसे उर्दू अथवा अंग्रेज़ीके अक्षर बने हैं.

सन् .ई० से अनुमान ७०० वर्ष पहिले फ़िनीशियन अक्षरोंसे ग्रीक (यूनानी) अक्षर बने, और पश्चिमी ग्रीक अक्षरोंसे पुराने लाटिन, और उनसे अंग्रेज़ी अक्षर बने हैं. २६०० से अधिक वर्ष गुज़रनेपर आज भी अंग्रेज़ी अक्षरोंको फ़िनीशियन अक्षरोंसे मिलाकर देखें, तो, A (ए), B (बी), C (सी), F (एफ), I (आई), K (के), L (एल), M (एम), N (एन), P (पी), Q (क्यु), R (आर), और T (टी) अक्षर ठीक उन्हीं उच्चारण वाले फ़िनीशियन अक्षरोंसे बहुत कुछ मिलते हैं (२).

इसी प्रकार गांधार लिपिको (३) फ़िनीशियनसे मिलावें, तो " अ, क, ट, न, फ, ब, र, और ह " अक्षर उन्हीं उच्चारण वाले फ़िनीशियन अक्षरोंसे मिलते जुलते मालूम होते हैं; जिसका कारण यह है, कि गांधार लिपि फ़िनीशियनसे निकली हुई ईरानकी लिपिसे बनी है.

यदि पाली अक्षर फ़िनीशियन, अरामिअन, या हिय्यारिटिक आदि किसीसे बने हों, तो अंग्रेज़ी और गांधार अक्षरोंकी नांई पालीके कितने-एक अक्षर अपनी मूल लिपिके साथ आकृति और उच्चारणमें अवश्य मिलने चाहियें, परन्तु उनका परस्पर मिलान करनेसे पाया जाता है कि:-

मिस्र देशके अक्षरों (४) मेंसे एक भी अक्षर समान उच्चारण वाले पाली अक्षरसे नहीं मिलता.

फ़िनीशियन (४) वर्णमालाके २२ अक्षरोंमेंसे केवल एक अक्षर " गिमेल " (ग) पालीके " ग " से मिलता है.

हिम्यारिटिक (५) अक्षरोंमेंसे केवल " द " और " ब " बाची दो अक्षर पालीके " द " और " ब " से कुछ २ मिलते हैं.

अरामियन (६) अक्षरोंमेंसे एक भी अक्षर पालीसे नहीं मिलता,

---

(१) पाली अक्षरोंके लिये देखो लिपिपत्र पहिला.

(२) वेबस्टर्स इंटर नेशनल डिक्शनेरी (पृ० २०११).

(३) गांधार लिपिके लिये देखो लिपिपत्र २५ वां.

(४) एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (नवीं बार छपा हुआ, जिल्द १, पृ० ६००).

(५) बौम्बे ब्रैंच रायल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल (जिल्द २, पृ० ६६ के पासकी प्लेट).

(६) प्रिन्सेप्स इंडिअन ऐंटीक्विटीज़ (एडवर्ड टॉमस साहिबकी छपवाई हुई, जिल्द २, पृ० १६८ के पासकी प्लेट).

सिवा इसके कि यदि " श " के स्थानापन्न अक्षरको उल्टा करके देखा जावे, तो वह पालीके " श " से कुछ कुछ मिलता है.

इससे स्पष्ट है, कि जैसे अंग्रेज़ी और गांधार अक्षर फ़िनीशियनसे मिलते जुलते हैं, वैसे पाली फ़िनीशियन आदिसे नहीं मिलते.

पाली और गांधार लिपियोंका परस्पर बिल्कुल न मिलना भी साबित करता है, कि ये दोनों लिपि एकही मूल लिपिकी शाखा नहीं हैं, अर्थात् गांधार लिपि सेमिटिक वर्गकी है, और पाली सेमिटिकसे भिन्न है.

फ़िनीशियनसे निकली हुई समस्त लिपियोंमें स्वरके चिन्ह अलग नहीं है, किन्तु अक्षर ही उनका काम देते हैं, और पालीमें व्यंजनके साथ स्वरका चिन्ह मात्रही रहता है.

ग्रीक, अंग्रेज़ी, हिम्यारिटिक, मेंडिअन, एथिआपिक, अरबी, कूफी, पहलवी, आदि, जितनी लिपियें फ़िनीशियनसे बनी हैं, उन सबकी वर्णमालाका क्रम लग भग फ़िनीशियन क्रम (अ-ब-ग-द-ह आदि) से मिलता है, परन्तु पालीकी वर्णमालाका क्रम (अ-आ-इ-ई आदि) वैसा नहीं है.

फ़िनीशियन वर्गकी कोई वर्णमाला ऐसी सम्पूर्ण नहीं है, कि जिससे पाली लिपिके समस्त अक्षरोंके उच्चारण प्रकट किये जासकें.

इन प्रमाणोंसे प्रतीत होता है, कि पाली लिपि फ़िनीशियन या उससे निकली हुई किसी अन्य लिपिसे नहीं बनी, किन्तु आर्य लोगोंकी निर्माणकी हुई एक स्वतन्त्र लिपि है, जिससे भारतवर्षके अतिरिक्त सीलोन, जावा आदिकी और तिब्बतसे मंगोलिया तक मध्य एशियाकी (१) लिपियें बनी हैं.

इस विषयमें एडवर्ड टॉमस साहिब (२) लिखते हैं, कि पाली अक्षर भारतवर्षके लोगोंनेही बनाये हैं, और उनकी सरलतासे उनके बनाने वालोंकी बड़ी बुद्धिमानी प्रकट होती है.

---

(१) वेबर साहिब को कुगिअर स्थानसे (देखो पत्र पहिलेका नोट ४) जो त्रुटित संस्कृत पुस्तक मिले हैं, उनमेंसे ४ पुस्तक भारतवर्षकी गुप्त लिपिके हैं, और ५ पुस्तक मध्य एशियाकी प्राचीन संस्कृत लिपिके हैं, मध्य एशियाकी प्राचीन लिपि यहांकी लिपिसे मिलती हुई है, परन्तु अक्षरोंकी आकृति चौखूंटी है, और कोई कोई अक्षर विलक्षण भी हैं. एक पुस्तक में अनुस्वारके बिन्दू दो दो हैं, और उसकी भाषा शुद्ध संस्कृत नहीं है, अर्थात् कितनेएक शब्द संस्कृतके हैं, और कितनेएक और ही भाषाके हैं, (एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल, जिल्द ६२, हिस्सह १, पृष्ठ ४-८, प्लेट ३).

(२) न्युमिस्मैटिक क्रानिकल (सन् १८६३ ई०, नम्बर ३).

जेनरल कनिंगहाम (१) लिखते हैं, कि पाली लिपि भारतवर्षके लोगोंकी निर्माण कीहुई एक स्वतन्त्र लिपि है.

इसी तरहका अभिप्राय प्रोफ़ेसर क्रिश्चियन लैसन (२), प्रोफ़ेसर जॉन डाउसन (३), और प्रोफ़ेसर गोल्डस्टूकरका भी है.

" गांधार " लिपि.

राजा अशोकके समय गांधार देशमें पालीसे सर्वथा भिन्न प्रकारकी एक लिपि प्रचलित थी, जो उक्त देशके नामसे " गांधार " (४) लिपि कहलाती है. राजा अशोककी शहबाज़गिरि और मान्सेराकी धर्माज्ञा, तुरुष्क (५) वंशी राजा कनिष्क और हुविष्कके लेख, और कितनेएक छोटे छोटे अन्य लेख भी इस लिपिमें पाये गये हैं. इस लिपिका एक ताम्रपत्र बहावलपुरसे ४० मील दक्षिण एक स्तूप (६) में से मिला है, जिसके चारों किनारोंपर राजा कनिष्कके ११ वें वर्षका ४ पंक्तिका लेख है. इन लेखोंके अतिरिक्त बाक्ट्रियासे (७) नासिक तक देशी और विदेशी राजाओंके बहुतसे ऐसे सिक्के भी मिले हैं, जिनमेंसे किसीपर एक तरफ़ ग्रीक और दूसरी ओर गांधार लिपिके, किसीपर गांधार और पालीके, और किसीपर दोनों ओर गांधार लिपिके अक्षर हैं. पंजाबसे पूर्वमें इस लिपिका कोई लेख नहीं पाया गया, परन्तु उस तरफ़ बहुतसे सिक्के मिले हैं, जिनपर गांधार और ग्रीक लिपिके अक्षर हैं. वे सिक्के बाक्ट्रियाकी तरफ़से आये हुए ग्रीक (यूनानी) और क्षत्रप (८) वगैरह विदेशी राजाओंके हैं.

---

(१) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् (जिल्द १, पृष्ठ ५२).

(२) Indische Alterthumskunde 2nd Edition i. p. 1006 (1867).

(३) रायल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल, (जिल्द १३, पृष्ठ १०२, सन् १८८१ ई०).

(४) " ललित विस्तर " के १० वे अध्यायमें ६४ लिपियोंमें दूसरी " खरोष्टी " (खरोष्ट्री) लिपि लिखी है, वह यही लिपि है, इसको " बाक्ट्रियन, " " बाक्ट्रियन पाली " " आरियन पाली ", " नार्थ (उत्तरी) अशोक " और " काबुलिअन " लिपि भी कहते हैं.

(५) कनिष्क और हुविष्कको कल्हण पंडितने तुरुष्क (तुर्क) लिखे हैं. (राजतरङ्गिणी, तरङ्ग १, श्लोक १७०).

(६) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ३९, हिस्सह १, पृष्ट ६५-७०, प्लेट २).

(७) हिन्दूकुश पर्वत और आक्सस नदीके बीचके देशका नाम " बाक्ट्रिया " था.

(८) क्षत्रप (सत्रप) वंशके राजाओंने ईरानकी ओरसे आकर इस देशमें अपना राज्य जमाया था, क्षत्रपोंकी दो शाखाओंका होना पाया जाता है, जिनमें एक तो उत्तरी

यह लिपि आर्य लोगोंकी निर्माण कीहुई नहीं है, क्योंकि इसके अक्षर पालीसे न मिलने, इसके लिखनेका क्रम सेमिटिक लिपियोंकी नाईं दाहिनी ओरसे बाईं ओरको होने, और कितनेएक अक्षरोंकी आकृति और उच्चारण ईरानकी प्राचीन लिपिसे मिलते हुए होनेसे अनुमान होता है, कि सन् ई० से करीबन् ५०० वर्ष पहिले जब ईरानके बादशाह डारिअस प्रथमने इस देशपर हमला करके पंजाबके पश्चिमी हिस्सह तकका मुल्क दबा लिया था, उस समय ईरानकी लिपि गांधार देशमें प्रवेश हुई होगी, परन्तु वह पाली जैसी सम्पूर्ण न होनेके कारण उसमें नवीन अक्षर और स्वरोंआदिके चिन्ह मिलाकर इस देशकी भाषा स्पष्ट रीतिसे लिखीजानेके योग्य बनानी पड़ी होगी.

इस लिपिका प्रचार इस देशमें कबतक रहा, यह निश्चय करना कठिन है. पंजतारसे मिले हुए एक लेखमें (१) संवत् १२२ है, जो शक संवत् अनुमान किया गया है; इससे उस लेखका समय विक्रम संवत् २५७ होता है. हश्तनगरसे मिली हुई मूर्ति (२) के नीचे "सं २७४ पोठवदस मसस दिवसंमि पंचमि ५" (सं २७४ प्रोष्ठपदस्य (३) मासस्य दिवसे पंचमे ५) खुदा है. यदि यह भी शक संवत् मानाजावे, तो यह लेख विक्रम संवत् ४०९ का ठहरता है, परन्तु अक्षरोंकी आकृतिसे वह इस समयसे पहिलेका प्रतीत होता है.

सिक्कोंमें तो इस लिपिका प्रचार विक्रम संवत्की तीसरी शताब्दीके पूर्वार्द्धसेही छूट गया था, और इसके एवज़ पालीका प्रचार होगया था. इसलिये विक्रम संवत्की तीसरी शताब्दीके उत्तरार्द्ध या पांचवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें गांधार लिपिका प्रचार इस देशसे उठगया होगा.

अर्थात् मथुराकी, और दूसरी पश्चिमी अर्थात् काठियावाड़ (सौराष्ट्र) की. मथुराकी शाखा के लेख और सिक्के बहुत नहीं मिले, परन्तु सौराष्ट्रकी शाखाके लेख और सिक्के इतने मिले हैं, कि उनसे क्रम पूर्वक २७ राजाओंके नाम मालूम हुए हैं. इस शाखाका स्थापन करने वाला "नहपान" था, जिसको "कुसुल पतिक" नामके शक राजाने सारे उत्तरी भारतवर्षको विजयकर दक्षिणके विजयको भेजा था. इसके जमाई उषवदात (ऋषभदत्त) के नासिकके लेखोंसे पाया जाता है, कि "नहपान" बड़ा प्रतापी राजा था, और इसका राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था. इसके निःसंतान मरने पर इसका राज्य छ्समोतिकके पुत्र चष्टनको मिला. सौराष्ट्रके चत्रप राजाओंके बहुतसे सिक्कोंमें (शक) संवत् दिया हुआ है.

(१) आर्किंयालाजिकल सर्वे आफ् इण्डिया-रिपोर्ट (जिल्द ५, पृष्ठ ६१, प्लेट १६).

(२) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ५८, हिस्सह १, पृष्ठ १४५, प्लेट १०).

(३) "प्रोष्ठपद" भाद्रपद मासका नाम है.

प्राचीन लिपियोंका पढ़ाजाना.

सन् १७८४ ई० ता० १५ जन्वरीको सर विलियम जोन्सकी प्रेरणासे एशिया खण्डके इतिहास, शास्त्र, कारीगरी (शिल्प), तथा साहित्य आदिका शोध करनेके निमित्त "एशियाटिक सोसाइटी" नामका एक समाज कलकत्ता नगरमें स्थापन हुआ, जिसमें बहुतसे विद्वान् शामिल होकर अपनी अपनी रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न विषयोंमें समाजका उद्देश सफल करनेको प्रवृत्त हुए. कितनेएक विद्वानोंने ऐतिहासिक विषयोंके शोधमें लगकर प्राचीन लेख, दानपत्र, सिक्के, तथा ऐतिहासिक पुस्तकोंका टटोलना प्रारम्भ किया. इस प्रकार प्रथम भारतवर्षकी प्राचीन लिपियोंपर विद्वानोंकी दृष्टि पड़ी.

सन् १७८५ ई० में चार्ल्स विल्किन्स साहिबने दीनाजपुर ज़िलेके बदाल स्थानके पास मिला हुआ एक स्तम्भपरका लेख पढ़ा, जो बंगालके राजा नारायणपालके समयका था (१). उसी वर्षमें पंडित राधाकान्त शर्माने दिल्लीकी फ़ीरोज़शाह लाटपरके चौहान राजा वीसलदेव अर्थात् विग्रहराज (२) के समयके लेख पढ़े. इन लेखोंकी लिपि देवनागरीसे बहुत मिलती हुई होनेके कारण ये आसानीके साथ पढ़ेगये, परन्तु इसी वर्षमें जे० एच० हेरिंगटन साहिबने बुद्धगयाके पासवाली "नागार्जुनी" और "बराबर" की गुफाओंमें इनसे अधिक पुराने, मौखरी वंशके (३) राजा

---

(१) सन् १७८१ ई० में विल्किन्स साहिब ने "मुंगेर" से मिला हुआ, बंगालके राजा देवपालका एक दानपत्र पढ़ा था, परन्तु वह भी सन् १७८८ ई० में छपा (दूसरी वार छपी हुई एशियाटिक रिसर्चेज़, जिल्द १, पृष्ठ ११०-१७).

(२) यह राजा अच्छा विद्वान् था. इसने (विक्रम) संवत् १२१० में "हरकेलि" नाटक रचा था, जिसका कुछ हिस्सह शिलापर खुदा हुआ अजमेरके ढाई दिनके झोंपड़े में रक्खा हुआ है. इसका बनाया हुआ एक श्लोक वल्लभदेवने सुभाषितावलीमें दिया है (सुभाषितावली, पृष्ठ १९५, श्लोक ११६२).

(३) जेनरल कनिंग्हामको मिट्टीकी एक मुद्रा (मुहर) गयासे मिली है, जिसपर पाली अक्षरोंमें "मोखलीणां" (मौखरीणां) पढ़ा जाता है (कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम्, जिल्द तीसरीकी भूमिका, पृष्ठ १४), जिससे इस वंशका बहुत प्राचीन होना पाया जाता है. बाणभट्टने हर्षचरितमें श्रीहर्षकी बहिन राज्यश्रीका विवाह इसी वंशके राजा अवन्तिवर्माके पुत्र ग्रहवर्माके साथ होना लिखा है (बम्बईका छपा हुआ हर्षचरित, उच्छ्वास ४, पत्र १५६). देव बर्नारकसे मिले हुए एक लेखमें शर्ववर्माके बाद अवन्तिवर्माका नाम है, जो इसी ग्रहवर्माका पिता होगा (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया-रिपोर्ट, जिल्द १६, पृष्ठ ७४, ७८).

अनन्तवर्माके ३ लेख पाये, जिनकी लिपि गुप्त (१) लिपिसे मिलती हुई होनेके कारण उनका पढ़ना कठिन प्रतीत हुआ. परन्तु चार्ल्स विल्किन्सने ई० सन् १७८५ से ८९ तक श्रमकर तीनों लेख पढ़लिये. इससे गुप्त लिपिकी अनुमान आधी वर्णमालाका ज्ञान होगया.

इसी प्रकार दक्षिणमें डॉक्टर बी० जी० बैबिंगटनने मामल्लपुरके कितनेएक संस्कृत और तामिळ भाषाके प्राचीन लेख पढ़कर सन् १८२८ ई० में उनकी वर्णमाला (२) तय्यार की.

वाल्टर इलियट साहिबने प्राचीन कनडी अक्षरोंको पहिचाना, और सन् १८३३ ई० में उनकी वर्णमाला प्रकट की.

सन् १८३४ ई० में कप्तान ट्रॉयर इस उद्योगमें लगे, और इलाहाबाद (प्रयाग) के स्थम्भपरके समुद्रगुप्तके लेखका कुछ हिस्सह पढ़ा (३). इसी वर्षमें डॉक्टर मिलने इस लेखको पूरा पढ़ सन् १८३७ ई० में भिटारीके स्तम्भपरका स्कन्दगुप्तका लेख (४) भी पढ़लिया.

सन् १८३५ ई० में डब्ल्यू० एच० वॉथनने वल्लभीके कितनेएक दानपत्र पढ़े (५).

सन् १८३७-३८ ई० में जेम्स प्रिन्सेपने दिल्ली, कहाऊं, और एरणके स्थम्भों, तथा सांची और अमरावतीके स्तूपों, और गिरनार पर्वतपरके गुप्ताक्षरोंके लेख पढ़े (६). कप्तान ट्रॉयर, डॉक्टर मिल, और प्रिन्सेप साहिबके श्रमसे चार्ल्स विल्किन्सकी गुप्ताक्षरोंकी अधूरी वर्णमाला पूर्ण होगई, और गुप्त राजाओंके समयतकके लेख, दानपत्र, और सिक्के पढ़नेके लिये सुगमता हुई.

पाली लिपि– यह लिपि गुप्त लिपिसे भी बहुत पुरानी होनेके कारण इसका पढ़ना बड़ा दुस्तर था. सन् १७९५ ई० में सर चार्ल्स मेलेटने इलोराकी गुफाओंके कितनेएक छोटे छोटे लेखोंकी छाप तय्यारकर सर विलियम जोन्सके पास भेजी. उन्होंने ये लेख विल्फ़र्ड साहिबके पास भेजे, परन्तु जब उक्त साहिबसे वे नहीं पढ़े गये, तो एक पण्डितने कितनीएक

---

(१) गुप्त वंशी राजाओंके समयकी प्राचीन देवनागरी लिपिको "गुप्त लिपि" कहते हैं (इस लिपिके वास्ते देखो लिपिपत्र तीसरा, चौथा, और पांचवां).

(२) ट्रैन्जैक्शन्स आफ् रायल एशियाटिक सोसाइटी (जिल्द २, पृष्ठ २६४-६९, प्लेट १३, १५, १७, १८).

(३) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ३, पृष्ठ ११८).

(४) ” ” (जिल्द ६, पृष्ठ १).

(५) ” ” (जिल्द ४, पृष्ठ ४७६).

(६) ” ” (जिल्द ६, ७).

प्राचीन लिपियोंकी वर्णमालाका पुस्तक उनको बतलाकर उन लेखोंको अपनी इच्छाके अनुसार कुछका कुछ पढ़ादिया. विल्फ़र्ड साहिबने इस तरह पढ़े हुए वे लेख अंग्रेज़ी भाषांतर सहित सर विलियम जोन्सके पास पीछे भेजदिये. बहुत वर्षोंतक इन लेखोंके शुद्ध पढ़ेजानेमें किसी को शंका नहीं हुई, परन्तु पीछेसे उनका पढ़ना और भाषांतर बिल्कुल कपोल कल्पित ठहरे.

एशियाटिक सोसाइटी बंगालके संग्रहमें दिल्ली, और इलाहाबादके स्तम्भों, तथा खण्डगिरिके चट्टानपर खुदे हुए लेखोंकी छाप (नक़ल) आगई थीं, परन्तु विल्फ़र्ड साहिबका यत्न निष्फल होनेसे कितनेएक वर्षोंतक उन लेखोंके पढ़नेका उद्योग न हुआ. प्रिन्सेप साहिबको इन लेखोंका वृत्तांत जाननेकी जिज्ञासा लग रही थी, जिससे सन् १८३४-३५ ई० में उन्होंने इलाहाबाद, रधिया और मथियाके स्तंभोंके लेखोंकी प्रति मंगवाई, और उनको दिल्लीके लेखसे मिलाकर देखने लगे, कि इनमें कोई शब्द एकसा है वा नहीं. इस प्रकार चारों लेखोंको पास पास रखकर मिलानेसे तुरन्त ही यह पायागया, कि ये चारों लेख एक ही हैं, जिससे उनका उत्साह अधिक बढ़ा, और उन्हें अपनी जिज्ञासा पूर्ण होनेकी दृढ़ आशा बंधी. पश्चात् इलाहाबादके लेखसे भिन्न भिन्न आकृतिके अक्षरोंको अलग अलग छांटने लगे, तो गुप्ताक्षरोंके समान उनमें भी कितनेएक अक्षरोंके साथ स्वरोंके पृथक् पृथक् पांच चिन्ह लगे हुए पाये, जिनको एकत्र कर प्रसिद्ध किया (१). इससे कितनेएक विद्वानोंको उक्त अक्षरोंके यूनानी होनेका जो भ्रम था वह दूर होगया. स्वरोंके चिन्ह पहिचाननेके पश्चात् मिस्टर प्रिंसेप अक्षरोंके पहिचाननेका उद्योग करने लगे, और इस लेखके प्रत्येक अक्षर-को गुप्त अक्षरोंसे मिलाना, और जो मिलता जावे उसको वर्णमालामें क्रमवार रखना प्रारम्भ किया. इस प्रकार उक्त साहिबने बहुतसे अक्षर पहिचानलिये.

प्रिन्सेप साहिबकी नाईं पादरी जेम्स स्टिवन्सन भी इसी शोधमें लगे हुए थे. उन्होंने इस लिपिके "क, ज, प और व" अक्षरोंको (२) पहिचाना, तत्पश्चात् इन अक्षरोंकी सहायतासे लेख पढ़कर उनका भाषान्तर करनेके उद्योगमें लगे, परन्तु कुछ तो अक्षरोंके पहिचाननेमें भूल होजाने, कुछ वर्णमाला पूरी न होने (३), और इसके अतिरिक्त

(१) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ३, पृष्ठ ११७, प्लेट ५).
(२) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ३, पृष्ठ ४८५).
(३) "न" को "र" पढ़लिया था, और "द" को पहिचाना नहीं था.

उन लेखोंकी भाषाको संस्कृत मानकर, उसी भाषाके नियमानुसार पढ़नेसे वह उद्योग निष्फल हुआ, परन्तु प्रिंसेप साहिब निराश न हुए. सन् १८३६ .ई० में प्रोफ़ेसर लैसनने एक बाक्ट्रियन सिक्केपर इन्हीं अक्षरोंमें आगेथोक्लीस (Agathocles) का नाम पढ़ा. सन् १८३७ .ई० में मिस्टर प्रिंसेपने सांचीसे मिले हुए स्तम्भोंपरके कई एक छोटे छोटे लेख एकत्र करके उन्हें देखा, तो उन सबोंके अन्तमें दो अक्षर एकसे दिखाई दिये, और उनके पहिले प्रायः " स " अक्षर पाया गया, जिसको प्राकृत भाषाकी षष्ठि विभक्तिके एक वचनका प्रत्यय मानकर यह अनुमान किया, कि ये सब लेख अलग अलग पुरुषोंकी भेट प्रगट करते होंगे, और अन्तके दोनों अक्षर, जो पढ़े नहीं जाते, उनमें पहिलेके साथ आकारकी मात्रा (चिन्ह) है, और दूसरेपर अनुस्वार है, इसलिये पहिला अक्षर " दा " और दूसरा " नं " (दानं) ही होगा. इस अनुमानके अनुसार " द " और " न " के पहीचाननेपर वर्णमाला सम्पूर्ण होगई, और दिल्ली, इलाहाबाद, सांची, मथिया, रधिया, गिरनार, धौली, आदि स्थानोंके लेख सुगमता पूर्वक पढ़लिये गये, जिससे यह भी निश्चय होगया, कि उनकी भाषा जो पहिले संस्कृत मानलीगई थी, वह अनुमान असत्य था, बरन उनकी भाषा उक्त स्थानोंकी प्रचलित देशी (प्राकृत) भाषा थी. इन पाली अक्षरोंके पढ़ेजानेसे पिछले समयके सारे लेख पढ़ना सुगम होगया, क्यौंकि भारतवर्षकी संपूर्ण प्राचीन लिपियोंका मूल यही लिपि है.

गांधार लिपि- कर्नेल् टॉडने एक बड़ा संग्रह बाक्ट्रियन और सीथियन (१) सिक्कोंका एकत्र किया था, जिनके एक ओर ग्रीक और दूसरी ओर गांधार लिपिके अक्षर थे. जेनरल वंटुराने सन् १८३० .ई० में मानिक्यालाके स्तूपको खुदवाया (२), तो उसमेंसे कई एक सिक्के और दो लेख इस लिपिके मिले. इनके अतिरिक्त सर अलेग्ज़ैंडर बर्न्स आदि कितनेएक प्राचीन शोधकोंने भी बहुतसे ऐसे सिक्के एकत्र किये, कि जिनके एक ओरके ग्रीक अक्षर पढ़े जासक्ते थे, परन्तु दूसरी ओरके गांधार अक्षरोंके पढ़नेके लिये कोई साधन नहीं था. इन अक्षरोंके लिये भिन्न भिन्न कल्पना होने लगी. सन् १८२४ .ई० में कर्नेल टॉडने कडफ़िसस (Kadphises) के सिक्केपरके इन अक्षरोंको " ससेनियन " प्रकट किया. सन् १८३३ .ई० में

---

(१) सीथियन (तक्षक) राजा तातारकी तरफ़से इस देशमें आये थे, उनमें कनिष्क बड़ा प्रतापी हुआ. (सीथियन राजाओंके सिक्कोंके लिये देखो टामस साहिबकी छपवाई हुई " प्रिन्सेप्स एन्टिक्विटीज़ ", जिल्द १, प्लेट २१-२२).

(२) प्रिन्सेप्स एन्टिक्विटीज़ (जिल्द १, पृष्ठ ९३-९९).

ऐपोलोडॉटस (Apollodotos) के बाक्ट्रियन सिक्केपरके इन्हीं अक्षरोंको मिस्टर प्रिन्सेपने पहलवी अनुमान किया, और एक सीथियन सिक्केपरकी इसी लिपिको व ऐसेही मानिक्यालाके लेखोंकी लिपिको भी पाली बतलाया, और उनकी आकृति टेढ़ी होनेसे ऐसा अनुमान किया, कि छापे और महाजनी लिपिके नागरी अक्षरोंमें जैसा अन्तर है, वैसाही दिल्ली आदिके लेखोंकी पाली लिपि और इनकी लिपिमें है, परन्तु पीछेसे स्वयं उनको अपना अनुमान असत्य भासने लगा. सन् १८३४ ई० में कप्तान कोर्टको एक स्तूपमेंसे इसी लिपिका एक लेख मिला, जिसको देखकर मिस्टर प्रिन्सेपने फिर इन अक्षरोंको पहलवी माना. मिस्टर मेसनको, जो अफ़ग़ानिस्तानमें प्राचीन शोध कर रहे थे, जब यह मालूम होगया, कि एक ओर ग्रीक अक्षरोंमें जो नाम है, ठीक वही दूसरी तरफ़ गांधार लिपिमें है, तो मिनेन्ड्रो (Menandrou), ऐपोलोडोटो (Apollodotou), अरमेओ (Ermaiou), बेसिलेअस (Basileos), और सोटेरस (Soteros) शब्दोंके पहलवी चिन्ह पहिचानकर मिस्टर प्रिन्सेपको लिख भेजे. मिस्टर प्रिन्सेपने उन चिन्होंके अनुसार सिक्के पढ़कर देखे, तो शुद्ध प्रतीत हुए, और ग्रीक अक्षरोंके अनुसार इन अक्षरोंको पढ़नेसे क्रम क्रमसे १२ राजाओंके नाम, और ६ खिताब पढ़लिये गये. ऐसे इस लिपिके बहुतसे अक्षरोंका बोध होकर यह भी ज्ञात होगया, कि ये अक्षर दाहिनी ओरसे बाईं ओरको पढ़े जाते हैं. इससे उनको पूर्ण विश्वास हुआ, कि ये अक्षर सेमिटिक वर्गके ही हैं, और पहलवीका एक रूप है, परन्तु इसके साथ ही उनकी भाषा, जो वास्तवमें प्राकृत थी उसको पहलवी मानली. इस प्रकार ग्रीक अक्षरोंके सहारेसे कितनेएक अक्षर मालूम होगये, किन्तु पहलवी भाषाके नियमोंपर दृष्टि रखकर पढ़नेका उद्योग करनेसे अक्षरोंके पहिचाननेमें अशुद्धता होगई, और उनका शोध आगे न बढ़सका. सन् १८३८ ई० में प्राचीन बाक्ट्रिया राज्यकी सीमामें मिले हुए कितनेएक सिक्कोंपर पाली अक्षर देखते ही, उन लेखोंकी भाषाको पाली मान उसी भाषाके नियमानुसार पढ़नेसे उनका शोध आगे बढ़सका, और मि० प्रिन्सेपने १७ अक्षर पहिचाने. मि० प्रिन्सेपकी नाईं मिस्टर नौरिस भी इस शोधमें लगे हुए थे, उन्होंने ६ अक्षर पहिचाने, और प्रिन्सेप साहिबके विलायत चले जानेपर कनिंगहाम साहिबने शेष ११ अक्षरोंको पहिचानकर वर्णमाला पूर्ण करदी, और संयुक्ताक्षर भी पहिचान लिये.

प्राचीन लेख और दानपत्रोंके संवत (१).

भारतवर्षके प्राचीन लेख और दानपत्रोंमें विक्रम संवत्, शक संवत्, गुप्त संवत् आदि नामके कई संवत् पाये जाते हैं, जिनके प्रारंभ आदिका हाल संक्षेपसे यहां लिखाजाता है.

सप्तर्षि संवत्-इसको लौकिक काल, लौकिक संवत्, शास्त्र संवत्, पहाड़ी संवत्, या कच्चा संवत् भी कहते हैं. यह संवत् २७०० वर्षका एक चक्र है. इसके विषयमें ऐसा मानाजाता है, कि सप्तर्षि नामके ७ तारे अश्विनीसे रेवती पर्यंत २७ नक्षत्रोंपर क्रम क्रमसे सौ सौ वर्षतक रहते हैं (२). इस प्रकार २७०० वर्षमें एक चक्र पूरा होकर दूसरे चक्रका आरंभ होता है. जहां जहां यह संवत् प्रचलित है, वहां नक्षत्रका नाम नहीं लिखा जाता, परन्तु केवल १ से लगाकर १०० तकके वर्ष लिखे जाते हैं. १०० वर्ष पूरे होनेपर शताब्दीका अंक छोड़कर फिर १ से प्रारंभ करते हैं. कश्मीरके पंचांग और कितनेएक पुस्तकोंमें प्रारंभसे भी वर्ष लिखे हुए मिलते हैं. कश्मीरमें इस संवत्का प्रारंभ कलियुगके २५ वर्ष पूरे होनेपर (२६ वें वर्षसे) मानते (३) हैं, परन्तु पुराण और ज्योतिषके ग्रन्थोंसे इसका प्रचार कलियुगके पहिलेसे होना पाया जाता है. जेनरल कनिं-

---

(१) "संवत्" संवत्सर शब्दका संक्षिप्त रूप है, जिसका अर्थ वर्ष है. इस शब्दको बहुधा विक्रम संवत् बतलानेवाला मानते हैं, परन्तु वास्तवमें ऐसाही नहीं है. यह शब्द सप्तर्षि संवत्, विक्रम संवत्, गुप्त संवत् आदिमेंसे हरएक संवत्के लिये आता है, कभी कभी विक्रम, शक, वलभी आदि शब्द भी "संवत्" के पहिले लिखे हुए पायेजाते हैं (विक्रम संवत्, वलभी संवत् आदि), परन्तु बहुधा केवल "संवत्" या उसका संक्षिप्त रूप "सं" लिखा हुआ मिलता है. इसके स्थानमें वर्ष, अब्द, शक आदि इसी अर्थवाले शब्द भी आते हैं.

(२) एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते (मुनयः) चरन्ति वर्षाणाम् (वाराही संहिता, अध्याय १३, श्लोक ४). सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्यते उदितौ दिवि । तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् (श्रीमद्भागवत, स्कंध १२, अध्याय २, श्लोक २७-२८. विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय २४, श्लोक ५३-५४).

पुराण और ज्योतिषके कितनेएक ग्रन्थोंमें इस प्रकारकी गति होना लिखा है, परन्तु कमलाकर भट्ट इस बातको नहीं मानते (अद्यापि कैरपिनरैर्गतिरार्यवर्यैर्दृष्टा न चात्र कथिता किल संहितासु । तत्काव्यमेव हि पुराणवदत्र तच्छास्त्रतेनैव तत्त्वविषयं गदितुं प्रवृत्ताः ॥ सिद्धान्ततत्त्वविवेक, भग्रहयुत्यधिकार, श्लोक ३२).

(३) कलेर्गतैः सायकनेत्र (२५) वर्षैः सप्तर्षिवर्यास्त्रिदिवं प्रयाताः । लोके हि संवत्सरपत्रिकायां सप्तर्षिमानं प्रवदन्ति सन्तः (डाक्टर बुलरका कश्मीरका रिपोर्ट, पृष्ठ ६०).

गहाम इस संवत्का सन् ई० से ६७७७ वर्ष पहिले (१) से होना मानते हैं.

(क) राजतरङ्गिणीमें कल्हण पंडितने लिखा है (२), कि इस समय लौकिक कालका २४ वां वर्ष प्रचलित है, और शक संवत्का १०७० वां गत वर्ष (३) है. इस हिसाबसे लौकिक संवत् ० शक संवत् (१०७०-२४ =) १०४६ गतके मुताबिक़ होता है, और इस संवत्का प्रत्येक पहिला वर्तमान वर्ष शक संवत्की हरएक शताब्दीके ४७ वें गत वर्षके मुताबिक़ है (४७, १४७, २४७, ३४७ आदि). विक्रम संवत्से १३५ वर्ष पीछे शक संवत् प्रारम्भ हुआ है, इसलिये इस संवत्का प्रत्येक पहिला वर्तमान वर्ष विक्रम संवत्की प्रत्येक शताब्दीके (४७+ १३५ = १८२) ८२ वें गत वर्षके मुताबिक़ होता है (८२, १८२, २८२, ३८२ आदि).

(ख) चम्बासे मिले हुए एक लेखमें (४) विक्रम संवत् १७१७, शक

---

(१) इंडियन ईरान (पृष्ठ ४).

(२) लौकिकाब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम् । सप्तत्याभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सरा: (राजतरङ्गिणी, तरङ्ग १, श्लोक ५२).

(३) ता० ७ एप्रिल सन् १८९४ ई० के दिन उत्तरी हिन्दुस्तान में जो विक्रम संवत्का नया वर्ष प्रारंभ हुआ है, उसको हम लोग विक्रम सम्वत् १९५१ वर्तमान, और ता० ६ एप्रिल के दिन जो वर्ष पूरा हुआ उसको विक्रम सम्वत् १९५० गत (गुज़रा हुआ) मानते हैं, जब "सम्वत् १९५१ चैत्र शुक्ला १" लिखते हैं, तब हम यह समझते हैं, कि सम्वत् १९५० गत होगया याने गुज़र गया, और १९५१ का यह पहिला दिन है, परन्तु ज्योतिषकी गणनाके अनुसार इसका अर्थ ऐसा होता है; कि सम्वत् १९५१ तो पूरा होचुका, और अगले सं० १९५२ का यह पहिला दिन है, अर्थात् जो अंक हैं उतने वर्ष पूरे होगये, वास्तवमें ऐसा ही होना ठीक है, क्योंकि व्यवहारमें भी जब किसी कार्यको हुए एक वर्ष पूरा होकर दूसरे वर्षका १ दिन जाता है, तब हम उसके लिये १ वर्ष, १ दिन लिखते हैं, न कि २ वर्ष, १ दिन. इससे स्पष्ट है, कि अंक गुज़रे हुए वर्ष ही बतलाते हैं, न कि वर्तमान वर्ष.

प्रचलित भूलका कारण ऐसा पाया जाता है कि प्राचीन समय में बहुधा वर्षके साथ गतेषु, अतीतेषु आदि "गुज़रे हुए" अर्थ वाले शब्द लिखे जाते थे, परन्तु ऐसे शब्दोंका लिखना छूट जानेसे उनको लोग वर्तमान मानने लग गये होंगे. प्राचीन लेख और दानपत्र आदिमें जो सम्वत् के अङ्क होते हैं, वे बहुधा गत वर्ष हैं, परन्तु जहां कहीं वर्तमान वर्ष लिखे हैं, तो एक वर्ष अधिक रक्खा है. मद्रास इहातेके दक्षिणी विभागमें आज भी ज्योतिषके अनुसार वर्तमान वर्ष लिखे जाते हैं, इसलिये वहांका सम्वत् हमारे सम्वत्से एक वर्ष आगे रहता है. वर्तमान उत्तरी विक्रम सम्वत् १९५१ में हम शक सम्वत् १८१६ लिखते हैं, जो ज्योतिषके हिसाब से १८१६ गत है, अतएव वहां वाले १८१७ वर्तमान लिखते हैं.

(४) श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यसंवत्सरे १७१७ श्रीशालिवाहनशके १५८२ श्रीशास्त्र संवत्सरे ३६ वैशाख वदि त्रयोदश्यां बुधवासरे मेषिकं संक्रांतौ (इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द २०, पृष्ठ १५२).

संवत् १५८२, शास्त्र संवत् ३६ वैशाख कृष्णा १३ बुधवार लिखा है. इससे भी शास्त्र संवत् १ (१७१७ – ३६ = १६८१) विक्रम संवत् १६८२ और शक संवत् (१५८२ – ३६ = १५४६) १५४७ में आता है, जो ठीक उपरकी गणनाके अनुसार है. इस लेखमें विक्रम और शक संवत् वर्तमान है या गत यह स्पष्ट नहीं लिखा, परन्तु गणितसे दोनों संवत् गत पायेजाते हैं.

(ग) पूनाके दक्षिण कालेजके पुस्तकालयमें शारदा (कश्मीरी) लिपिका "काशिका वृत्ति" पुस्तक है, जिसमें गत विक्रम संवत् १७१७, सप्तर्षि संवत् ३६, पौष कृष्णा ३ रविवार और तिष्य (पुष्य) नक्षत्र (१) लिखा है. इसमें स्पष्ट लिखदिया है, कि विक्रम संवत् १७१७ गत है, इससे भी इस संवत्का पहिला वर्ष (१७१७ – ३६ = १६८१) विक्रम संवत्की १७ वीं शताब्दीके ८२ वें वर्षमें आता है (२).

यह संवत् चैत्र शुक्ला १ से आरम्भ होता है, और इसके महीने पूर्णिमान्त (३) हैं. प्राचीन समयमें यह संवत् कश्मीरसे सिन्धतक प्रचलित था, परन्तु अब कश्मीर और उसके आस पासके पहाड़ी इलाकोंमें कहीं कहीं लिखा जाता है.

कलियुग संवत्– इसका प्रारंभ विक्रम संवत्से (४९९५–१९५१ =) ३०४४, और शक संवत्से (४९९५–१८१६ =) ३१७९ वर्ष पहिले माना जाता है. पंचांगोंमें इस संवत्के गत और वर्तमान वर्ष दोनों लिखे जाते हैं.

दक्षिणके चालुक्यवंशी राजा पुलिकेशि दूसरेके समयका एक लेख कलाडगी ज़िले (दक्षिण) में एहोळेकी पहाड़ीपरके जैन मंदिरमें मिला है, जिसमें लिखा है, कि भारतके युद्धसे ३७३५, और शक संवत्के ५५६ वर्ष (४)

---

(१) श्रीनृपविक्रमादित्यराज्यस्य गताब्दाः १७१७ श्रीसप्तर्षिमते सम्वत् ३६ पौ [व]ति ३ रवौ तिष्यनक्षत्रे (इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द २०, पृष्ठ १५२).

(२) (क), (ख), और (ग) में सप्तर्षि सम्वत्के वर्ष वर्तमान, और विक्रम तथा शक संवत्के गत हैं.

(३) भारतवर्षमें महीनोंका प्रारंभ दो तरहसे माना जाता है. गुजरातसे उत्तर वाले अपने महीनोंका प्रारम्भ कृष्णा १ को, और अन्त पूर्णिमाको मानते हैं, इसलिये उनके महीने पूर्णिमांत कहलाते हैं. गुजरात व दक्षिण वाले शुक्ला १ से आरम्भ और अमावास्याको अन्त मानते हैं, जिससे उनके महीने अमांत कहेजाते हैं.

(४) त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः सप्ताब्दशतयुक्तेषु श(ग)तेष्वब्देषु पञ्चसु (३०३५) पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च (५५६) समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजां (इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द ८, पृष्ठ २४२).

व्यतीत होनेपर (अर्थात् जब शक संवत्का ५५७ वां वर्ष प्रचलित था), यह मंदिर बनाया गया है. इस लेखसे ज्ञात होता है, कि भारतका युद्ध शक संवत्से (३७३५-५५६ =) ३१७९ वर्ष पहिले हुआ था. कलियुगका प्रारंभ भी शक संवत्से ठीक इतने ही वर्ष पहिले माना जाता है, जैसा कि ऊपर लिखा है. इससे स्पष्ट है, कि कलियुग संवत् और भारतयुद्ध (१) संवत् एक ही है. भारतके युद्धमें जय पानेसे राजा युधिष्ठिरको राज्य मिला था, अतएव भारतयुद्धसंवत् युधिष्ठिरसंवत्का ही नाम है.

कलियुगके प्रारम्भके विषयमें पुराण और ज्योतिषमें विवाद है विष्णुपुराण (२) और भागवत (३) में लिखा है, कि श्रीकृष्णने स्वर्ग-प्रयाण किया तभीसे (अर्थात् भारतका युद्ध हुए पीछे) कलियुगका प्रारम्भ हुआ, और परीक्षितके समय (कलियुगके प्रारंभ) में सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर थे (४).

ज्योतिषके आचार्य युधिष्ठिरके राज्य समय सप्तर्षियोंका मघा नक्षत्र पर होना तो मानते हैं, परन्तु कलियुगका प्रारंभ भारतके युद्धसे बहुत वर्ष पहिले हुआ मानते हैं. वराहमिहर वाराही संहितामें वृद्धगर्गके मतानु-सार लिखते हैं, कि राजा युधिष्ठिरके राज्य समयमें सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर थे, और उक्त राजाके संवत्के २५२६ वर्ष व्यतीत होनेपर (५) शक संवत् चला. इससे तो महाभारतका युद्ध कलियुगके (३१७९-२५२६ =) ६५३ वर्ष व्यतीत होनेपर मानना पड़ता है, परन्तु वाराही संहिताके टीकाकार भट्टोत्पलने वृद्धगर्गके पुस्तकसे, जो श्लोक उद्धृत किया है, उससे ऐसा पाया जाता है, कि वृद्धगर्ग द्वापर और कलियुगकी संधिमें सप्तर्षियोंको मघा नक्षत्रपर मानते (६) थे, अर्थात् भारतका युद्ध द्वापरके अन्तमें हुआ मानते थे, न कि कलियुगके ६५३ वर्ष बीतनेपर.

---

(१) महाभारतका कौरव पाण्डवोंका संग्राम.

(२) यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज । वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः (विष्णु-पुराण, अंश ४, अध्याय २४, श्लोक ५५).

(३) विष्णुर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः । तदाविशत्कलिर्लोकं पापेयद्रमते जनः (श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय २, श्लोक २९).

(४) ते त्वदीये द्विजाः (सप्तर्षयः) काले अधुना चाश्रिता मघाः (श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय २, श्लोक २८). ते (सप्तर्षयः) तु पारिक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम (विष्णु पुराण, अंश ४, अध्याय २४, श्लोक ५४).

(५) आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य (वाराही संहिता, सप्तर्षिचार, श्लोक ३).

(६) तथाच वृद्धगर्गः । कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतं (मघाः) । मुनयो धर्मनि-रताः प्रजानां पालने रताः (भट्टोत्पलकृत वाराही संहिताकी टीका, सप्तर्षिचार, श्लोक ३).

पराशरने (१) कलियुगके ६६६ $\frac{८}{५०}$, आर्यभट्ट (१) ने ६६२ $\frac{२}{५}$, और राजतरंगिणीके कर्ता कल्हण पण्डित (२) ने ६५३ वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् भारतका युद्ध होना माना है.

इस तरह भारतयुद्धसंवत् अर्थात् युधिष्ठिरसंवत्के विषयमें भिन्न भिन्न मत हैं, परन्तु उपरोक्त जैन मन्दिरके लेखके अनुसार कलियुग संवत् और भारतयुद्ध संवत् एक ही सिद्ध होता है.

आर्यभट्टके समयतक ज्योतिषके ग्रन्थोंमें कलियुग संवत् लिखा जाता था, परन्तु वराहमिहरने उसके स्थानपर शक संवत्का प्रचार किया. प्राचीन लेख और दानपत्रोंमें कलियुग संवत् बहुत कम मिलता है.

बुद्धनिर्वाण संवत्- शाक्य मुनिके निर्वाण (मोक्ष) से बौद्ध लोगोंने, जो संवत् माना है, उसको "बुद्धनिर्वाण संवत्" कहते हैं. गयाके सूर्यमन्दिरमें सपादलक्षके (३) राजा अशोकचल्लके समयका एक लेख है, जिसमें बुद्धके निर्वाणका संवत् १८१३ कार्तिक वदि १ बुधवार लिखा है (४), परन्तु उसके साथ कोई दूसरा संवत् न देने, और बौद्धोंमें निर्वाणके समयमें मत भेद होनेके कारण इस संवत्का ठीक ठीक निश्चय नहीं होसक्ता.

सीलोन (५) अर्थात् सिंहलद्वीप, ब्रह्मा और स्याममें (६) बुद्धका निर्वाण सन् ई० से ५४४ (विक्रम संवत्से ४८७) वर्ष पहिले माना जाता है, और आसामके राज गुरु भी ऐसाही मानते हैं (७). पेगू

---

(१) इंडियन ईराज् (पृष्ठ ८).

(२) भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्त्तयेति विमोहिताः । केचिदेतां मृषा तेषां कालसङ्ख्यां प्रचक्रिरे ॥ शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले । कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन्कुरुपाण्डवाः (राजतरङ्गिणी, तरङ्ग १, श्लोक ४९, ५१).

(३) "सपादलक्ष" या "सवालक" सिवालिक पहाड़ियोंका नाम है. प्राचीन कालमें कमाऊंके राजा अपनेको "सपादलक्ष नृपति" कहते थे (इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ८, पृष्ठ ५९, नोट ६).

(४) भगवति परिनिर्वृते संवत् १८१३ कार्त्तिक वदि १ बुधे (इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १०, पृष्ठ ३४३).

(५) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् (जिल्द १ की भूमिका, पृष्ठ ३).

(६) प्रिन्सेप्स एण्टिक्विटीज् (जिल्द २, युसफुल टेबल्स, पृष्ठ १६५).

(७) " "

भौर चीन (१) वाले सन् .ई० से ६३८ (विक्रम संवत्से ५८१) वर्ष पहिले मानते हैं.

चीनी यात्री फ़ाहियान जो .ई० सन् ४०० में यहां आया था, वह लिखता (२) है, कि इस समय निर्वाणसे १४९७ वर्ष गुज़रे हैं. इससे निर्वाणका समय .ई० सन्से पूर्व (१४९७-४००=) १०९७ के निकट आता है. दूसरा चीनी यात्री हुएंत्संग, जो .ई० सन् ६२९ से ६४५ तक इस देशमें रहगया था, उसने कश्मीरके वृत्तान्तमें निर्वाणसे १०० वें वर्षमें अशोकका राज्य दूर दूरतक फैलना लिखा है (३).

सहस्राम, रूपनाथ, और बैराटकी अशोककी धर्माज्ञाओंमें निर्वाण संवत् २५६ दिया है, जिसपरसे डॉक्टर बुलरने सन् .ई० से पूर्व ४८३-२ और ४७२-१ के बीच निर्वाणका निश्चय किया है (४).

प्रोफ़ेसर कर्न (५) ने सन् .ई० से ३८८ (वि० सं० से ३३१), फ़र्गसन साहिबने (५) सन् .ई० से ४८१ (वि० सं० से ४२४), जेनरल कनिंगहाम ने (६) सन् .ई० से ४७८ (वि० सं० से ४२१), प्रोफ़ेसर मैक्सम्यूलरने (७) .ई० सन् से ४७७ (वि० सं० से ४२०), और पण्डित भगवानलाल इन्द्रजीने उपरोक्त गयाके लेखके अनुसार सन् .ई० से ६३८ (वि० सं० से ५८१) वर्ष पहिले निर्वाणका निश्चय किया है (८).

---

(१) प्रिन्सेप्स एण्टिक्विटीज़् (जिल्द २, युसफुल टेबल्स, पृष्ठ १६५).

(२) बुद्धिस्ट्रेकार्ड्स् आफ़् दी वेस्टर्न वर्ल्ड (जिल्द १ की भूमिका, पृष्ठ ५०).

(३) " " (जिल्द १, पृष्ठ १५०).

(४) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ६, पृष्ठ १५४).

(५) साइक्लोपीडिया आफ़् इण्डिया (जिल्द १, पृष्ठ ४९२).

(६) कार्पस इन्स्क्रिपशनम् इण्डिकेरम् (जिल्द १ की भूमिका, पृष्ठ ९).

(७) हिस्टरी आफ़् एन्श्यण्ट संस्कृत लिटरेचर (पृष्ठ २९८).

(८) अशोकचल्लके छोटे भाई दशरथका एक लेख लक्ष्मणसेन संवत् ७४ का मिला है (इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १०, पृष्ठ ३४६), जिसके आधार से गया के लेख में निर्वाणका समय कौनसा माना है, उसका निश्चय प्रसिद्ध प्राचीन शोधक पण्डित भगवानलाल इन्द्रजीने इस तरह किया है :—

लक्ष्मणसेन संवत् का प्रारम्भ .ई० सन् ११०९ में होना सही माना जावे, तो लक्ष्मणसेन संवत् ७४ + ११०८ = ११८२ ईसवी सन् होता है. लक्ष्मणसेन संवत् वाला लेख अशोकचल्लके छोटे भाई कुमार दशरथके समयका, और निर्वाण संवत् वाला लेख अशोकचल्लके समयका है, जिसमें दशरथका नाम नहीं है, किन्तु दशरथके लेखमें उसको अशोकचल्लका क्रमानुयायी लिखा है, इससे इन दोनों भाइयों का समकालीन होना, और दोनों लेखोंका समय भी क़रीबन् पास पासका होना चाहिये. दशरथके लेखके अनुसार निर्वाणका समय १८१३ — ११८२ = ६३१ वर्ष सन् .ई० से पूर्व के लगभग आता है,

मौर्य संवत्— उदयगिरिपरकी हाथीगुफामें राजा खारवेलका एक प्राकृत भाषाका लेख मिला है, जिसका संवत् पंडित भगवानलाल इन्द्रजीने "मुरियकाल (मौर्यकाल) १६५ वर्तमान, और १६४ गत" पढ़ा है (१) जेनरल कनिंगहामने कार्पस इन्स्क्रिपशनम् इंडिकेरम्की जिल्द १ में इस लेखकी जो, छाप दी है (प्लेट १७), उसमें " मुरियकाल " स्पष्ट नहीं पढ़ा जाता, किन्तु (——यकाल) " य " के पहिलेके अक्षरोंकी जगह खाली छोड़ दी है. मिस्टर प्रिन्सेप (२) और डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र (३) ने इस लेखके भाषान्तर किये हैं, परन्तु उनमें भी ये अक्षर छोड़ दिये हैं. केवल पंडित भगवानलाल इन्द्रजीने ही ये अक्षर निकाले हैं.

मौर्य संवत्के प्रारंभका कुछ भी पता नहीं लग सका, क्योंकि उपरोक्त लेखके सिवा किसी दूसरे लेखमें यह संवत् नहीं पाया गया.

राजा अशोककी गिरनार, शहबाज़गिरि और खालसीकी १३ वीं धर्माज्ञासे विदित होता है, कि उसने लाखों मनुष्योंका नाश कर कलिंगदेश विजय किया था. यह लेख कलिंगदेशमें होनेसे ऐसा अनुमान होता है, कि कदाचित् अशोकने कलिंगदेश जय किया उसकी यादगारमें उसी समयसे यह संवत् वहां चला हो. यह देश अशोकके राज्याभिषेकसे ८ वें वर्षमें विजय हुआ था, इसलिये यदि अशोकका राज्याभिषेक सन् ई० से अनुमान २६९ वर्ष पहिले माना जावे (४), तो उपरोक्त अनुमानके अनुसार इस संवत्का प्रारंभ सन् ई० से पूर्व (२६९-८=) २६१ वर्षके लगभग होना संभव है.

विक्रम संवत् (मालव संवत्)-इसके प्रारंभके विषयमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि मालवाके राजा विक्रम (विक्रमादित्य) ने शक (सीथियन या तुरुष्क)

अशोकचल्लका लेख दशरथके लेखसे कुछ पहिलेका होना सम्भव है, और उसके अनुसार निर्वाणका संवत् पेगूवालोंके मतानुसार (सन् ई० से ६३८ वर्ष पूर्व) आता है, और कार्तिक वदि १ बुधवार, विक्रम संवत् १२२७ व १२३३ में अर्थात् ता० २८ अक्टोबर सन् ११७० व ता० २० अक्टोबर सन् ११७६ ई० को आता है, पेगू और ब्रह्मा वाले अक्सर उस जगह (गया) पर आये, और वहां मन्दिर भी बनवाये हैं, तो पूर्ण सम्भव है, कि इस लेखका संवत् ईसवी सन् ११७६ के मुताबिक होगा, अतएव उस लेखमें निर्वाण संवत् सन् ई० से ६३८ वर्ष पहिलेका है (इण्डियन एण्टिक्केरी, जिल्द १०, पृष्ठ ३४७).

(१) बौम्बे गेज़ेटियर (जिल्द १६, पृष्ठ ६१३).

(२) कार्पस् इन्स्क्रिपशनम् इण्डिकेरम् (जिल्द १, पृष्ठ ९८ – १०१, १३२, १३४).

(३) एशियाटिक सोसाइटी बङ्गालकी प्रोसीडिंग्ज़ (जुलाई सन् १८७७ ई०, पृष्ठ १६६–६७).

(४) इन्स्क्रिपशन्स आफ पियदसि (प्रसिद्ध विद्वान् ई० सेनार्टके फ्रेंच पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद, जी० ए० ग्रीयर्सन साहिबका किया हुआ, जिल्द २, पृष्ठ ८६).

लोगोंका पराजय कर अपने नामका संवत् चलाया. इसका प्रारंभ कलियुगके (४९९५-१९५१ =) ३०४४ वर्ष व्यतीत होनेपर मानाजाता है, जिससे इस संवत्का पहिला वर्ष कलियुग संवत् ३०४५ के मुताबिक़ होता है. विक्रम संवत्की आठवीं शताब्दी तकके किसी पुस्तक, लेख, या दानपत्रमें विक्रमका नाम संवत्के साथ लिखा हुआ (विक्रम संवत्) अबतक नहीं पाया गया (१). धौलपुरसे मिले हुए चौहान चंडमहासेनके लेखमें (२) पहिले पहिल विक्रम संवत् ८९८ लिखा हुआ मिला है, तत्पश्चात् इस संवत्की प्रवृत्ति दिनोंदिन अधिक होती रही.

कुमारगुप्त पहिलेके समयके मंदसोरके सूर्यमंदिरके लेखमें संवत् इस तरह लिखा है:-

मालवानां गणस्थित्या यात(ते)शतचतुष्टये त्रिनवत्यधिके ब्दानाम्र(मृ)तौ सेव्य घनस्व(स्त)ने ॥ सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्ते ह्नि त्रयोदशे (३).

"मालवगण(मालवजाति)की स्थितिसे गत वर्ष ४९३ सहस्य (पौष) शुक्ला १३".

मन्दसोर ही से मिले हुए यशोधर्मके लेखमें भी संवत् इसी तरह दिया है:-

पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवतिसहितेषु । मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु (४).

"मालवगणकी स्थितिसे गत वर्ष ५८९".

---

(१) डाक्टर बुलरने काठियावाड़से मिला हुआ एक दानपत्र इण्डियन एण्टिक्वेरीकी जिल्द १२ वीं के पृष्ठ १५५ में छपवाया है, जिसमें विक्रम संवत् ७९४ कार्तिक कृष्णा अमावास्या, आदित्यवार, ज्येष्ठा नक्षत्र, और सूर्य ग्रहण लिखा है, परन्तु उक्त तिथिको रविवार, ज्येष्ठा नक्षत्र और सूर्य ग्रहण गणितसे साबित न होने, और उसकी लिपि इतनी पुरानी न होनेके कारण प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता फ्लीट साहिब (इण्डियन एण्टिक्वेरी. जिल्द १६, पृष्ठ १९७-९८), और डाक्टर कीलहार्नने (इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १९, पृष्ठ ३७०-७१) उस दानपत्रको कृत्रिम (जाली) ठहराया है.

(२) वसुनव [अ]ष्टौ वर्षा गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य (।) वैशाखस्य सिताया(यां) रविवारयुतद्वितीयायां ॥ चन्द्रे रोहिणिसंयुक्ते(युक्ते) लग्ने सिंघ(ह)स्य शोभने योगे (इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १९, पृष्ठ ३५).

(३) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, पृष्ठ ८३).

(४) " " (जिल्द ३, पृष्ठ १५४).

इन दोनों लेखोंमें, जो संवत् है, वह मालवजाति (१) की स्थिति होनेपर चला हुआ प्रतीत होता है, न कि विक्रमके समयसे.

इलाहाबादके स्तंभपरके राजा समुद्रगुप्तके लेखसे पाया जाता है, कि उक्त राजाने मालव, यौधेय आदि बहुतसी जातियोंको आधीन की थीं (२). जयपुर राज्य में नागर (कर्कोटक नगर) से मिले हुए कितने-एक सिक्कोंपर "मालवानां जयः" पढ़ा जाता है, और उनके अक्षरोंकी आकृतिसे जेनरल कनिंगहामने उनका काल ई० सन् से पूर्व २५० वर्षसे ई० सन् २५० के बीचका अनुमान किया है (३).

मंदसोरके दोनों लेख और इन सिक्कोंसे यह अनुमान होता है, कि मालव जातिके लोगोंने अवन्ती देश विजय कर उसकी यादगारमें अपने नामका "मालव संवत्", और उपरोक्त सिक्के चलाये होंगे. इन्हीं लोगोंके बसनेपर अवन्ती देश "मालव" (मालवा) कहलाया है, क्योंकि देशोंके नाम बहुधा उनमें बसने वाली जातियोंके नामसे प्रसिद्ध होते हैं, जैसे कि गुर्जर (गूजर) जातिसे "गुर्जरदेश" (गुजरात) आदि.

कुमारगुप्त पहिलेके लेख [गुप्त] संवत् ९६, ९८, ११३, और १२९ के मिले हैं (४), और उसके दो सिक्कोंपर [गुप्त] संवत् १२९ और १३० के अंकोंका होना जेनरल कनिंगहाम प्रकट करते हैं (५). गुप्त संवत् १ उत्तरी (चैत्रादि) विक्रम संवत् ३७७ के मुताबिक़ होनेसे उक्त राजाका राज्यकाल विक्रमी संवत् ४७२ से ५०६ तकका आता है, और मंदसोरके सूर्यमन्दिरके लेखसे इस राजाका मालव संवत् ४९३ में विद्यमान होना पाया जाता है. इससे स्पष्ट है, कि मालव संवत् और विक्रम संवत् एकही है, जैसे कि गुप्त और वल्लभी संवत्. आठवीं शताब्दी तकके लेखोंमें संवत्के साथ विक्रमका नाम न होने, और उसके पूर्व मालव

---

(१) "मालवानां गणस्थित्या" और "मालवगणस्थितिवशात्" में "गण" शब्दका अर्थ "जाति" है, जैसे कि यौधेयोंके सिक्कोंपरके लेख (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ् इण्डिया-रिपोर्ट, जिल्द १४, पृष्ठ १४१) "जय यौधेयगणस्य" में है.

(२) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, पृष्ठ ८).

(३) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ् इण्डिया—रिपोर्ट (जिल्द ६, पृष्ठ १८२).

(४) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, पृष्ठ ४०-४७, प्लेट ४ डी, ५, ६ ए, और एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द २, पृष्ठ २१०, नम्बर ३८).

(५) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ् इण्डिया-रिपोर्ट (जिल्द ९, पृष्ठ २४, प्लेट ५, नम्बर ६, ७).

संवत् लिखे जानेसे प्रतीत होता है, कि यह संवत् प्रारंभमें मालव लोगोंने चलाया था, परन्तु पीछेसे उसके साथ विक्रमका नाम किसी कारणसे जुड़कर विक्रम संवत् कहलाने लग गया (१), जैसे कि गुप्त राजाओंने अपने नामसे गुप्त संवत् चलाया, परन्तु उनका राज्य अस्त होकर वल्लभीके राज्यका उदय होनेपर वही संवत् "वल्लभी संवत्" कहलाने लग गया.

यदि यह संवत् विक्रम राजाने ही चलाया होता, तो विक्रमका नाम अन्य स्थानोंके लेखोंमें नहीं रहते भी मालवाके लेखोंमें तो प्रारंभसे ही मिलना चाहिये था.

जो वराहमिहरके समयमें यह संवत् सर्वत्र प्रचलित होता, और आज विक्रमको जैसा प्रतापी, यशस्वी, और परदुःख भंजन मानते हैं, वैसाही उस समयके लोग भी मानते होते, तो संभव नहीं, कि वराहमिहर अवन्ती (२) देश (मालवा) काही निवासी होकर ऐसे प्रतापी स्वदेशी राजाका संवत् छोड़, शक जातिके विदेशी राजाका संवत् (शक-संवत्) अपने पुस्तकोंमें दर्ज करे. वराहमिहरके ज्योतिषके पुस्तकोंमें कलि-युग संवत्के स्थानपर शक संवत् लिखनेका कारण यह है, कि उनके समयमें मालव (विक्रम) संवत् केवल मालवामें, और कहीं कहीं राजपूताना व मध्यहिन्दमें लिखा जाता था, और शक संवत् प्रायः सारे भारतवर्षमें प्रचलित था, इसलिये उनको अपने पुस्तकोंमें सर्वदेशी संवत् ही लिखना पड़ा.

गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त दूसरेके कितनेएक सिक्कोंपर उसके नामके

---

(१) ग्यारसपुरसे मिले हुए सं० ९३६ के लेखमें "मालवकालाच्छरदां षट्त्रिंशत्संयुतेष्वतीतेषु। नवसु शतेषु" लिखा रहनेसे (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया-रिपोर्ट, जिल्द १०, पृष्ठ ३३, प्लेट ११) पाया जाता है, कि "विक्रम संवत्" लिखनेका प्रचार होने बाद भी कहीं कहीं यह संवत् अपने असली नाम (मालव संवत्) से लिखा जाता था. कोटा नगरसे उत्तरमें कंस्वा (कण्वाश्रम) के शिवमन्दिरके लेखमें [संवत्सरशतैर्यातैः सपंचनवत्यर्गलैः सप्तभि (७९५) र्मालवेशानां मन्दिरं धूर्जटेः कृतं ॥ इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १९, पृष्ठ ५९], और मैनालगढ़ (इलाके मेवाड़) के महलोंके उत्तरी दर्वाजेके एक स्तंभपर खुदे हुए चौहान राजा विग्रहराजके क्रमानुयायी पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट या पृथ्वीदेव) के समयके लेखमें [मालवेश-गतवत्सर(रैः)शतैः द्वादशैश्चषट्विंश (१२२६) पूर्वकैः॥ एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल जिल्द ५५, हिस्सह १, पृष्ठ ४६] इस संवत्को मालवेश (मालवाके राजाका) संवत् लिखा है.

(२) आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः। आवंतिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहरो रुचिरां चकार (बृहज्जातक, अध्याय २८, श्लोक ९).

साथ "विक्रमांक" या "विक्रमादित्य" (१), और कितनेएकपर एक ओर चन्द्रगुप्तका नाम और दूसरी ओर " श्रीविक्रमः ", " अजित विक्रमः ", "सिंह विक्रमः ", " प्रवीरः ", " [वि]क्रमाजितः ", या " विक्रमादित्यः " (२) लिखे रहनेसे स्पष्ट है, कि उसका दूसरा नाम विक्रम या विक्रमादित्य था. इससे कितनेएक विद्वानोंका यह अनुमान है, कि उसीके नामसे शायद मालव संवत्को विक्रम संवत् कहने लग गये होंगे (३). वास्तवमें यह अनुमान ठीक भी पाया जाता है.

"ज्योतिर्विदाभरण" के कर्त्ताने उक्त पुस्तकके २२ वें अध्यायमें अपनेको उज्जैनके राजा विक्रमादित्यका मित्र और रघुवंश आदि तीन काव्योंका बनाने वाला कवि कालिदास प्रकट कर (४) गत कलियुग संवत् ३०६८ (वि० संवत् २४) के वैशाखमें उस पुस्तकका प्रारंभ, और कार्तिकमें समाप्त होना लिखा (५) है, और राजा विक्रमादित्यका वृत्तांत इस तरह दिया है:-

उसकी सभामें शंकु, वररुचि, मणि, अंशुदत्त, जिष्णु, त्रिलोचनहरि, घटखर्पर, और अमरसिंह आदि कवि, तथा सत्य, वराहमिहर, श्रुतसेन, बादरायण, मणित्थ, और कुमारसिंह आदि ज्योतिषी थे (६). धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहर और वररुचि ये नव उसकी सभामें रत्न (७) गिने जाते थे.

---

(१) रायल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल (जिल्द २१, पृष्ठ १२० -२१).

(२) " " (जिल्द २१, पृष्ठ ७१-८१).

(३) फर्ग्युसन साहिबका यह अनुमान था, कि विक्रमका संवत् प्रारम्भसे नहीं चला, किन्तु करूरके युद्धमें विक्रमादित्य अर्थात् उज्जैनके राजा हर्ष विक्रमने ई० स० ५४४ में शक लोगोंको विजय किया, तबसे विमक्र संवत् चला है, अर्थात् वि० सं० १ को ६०१ लिखा है.

(४) शंक्वादिपण्डितवराः कवयस्त्वनेका ज्योतिर्विदः सभमवंश्च वराहपूर्वाः । श्रीविक्रमार्कनृपसंसदि मान्यबुद्धिः स्तैरप्यहं नृपसखा किल कालिदासः (२२।१९) काव्यत्रयं सुमतिकृद्रघुवंशपूर्वं ततो ---च्छ्रुतिकर्मवादः । ज्योतिर्विदाभरणकालविधानशास्त्रं श्रीकालिदासकवितो हि ततो बभूव (२२।२०).

(५) वर्षैः सिंधुरदर्शनांबरगुणैः (३०६८)र्याते कलौ सम्मिते मासे माधवसंज्ञिके च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः । नाना कालविधानशास्त्रगदितज्ञानं विलोक्यादरादूर्जे ग्रन्थसमाप्तिरत्र विहिता ज्योतिर्विदां प्रीतये (२२।२१).

(६) शंकुः सुवाग्वररुचिर्मणिरंशुदत्तो जिष्णुस्त्रिलोचनहरी घटखर्पराख्यः । अन्येऽपि सन्ति कवयोऽमरसिंहपूर्वा यस्यैव विक्रमनृपस्य सभासदोऽमी (२२।८) सत्यो वराहमिहरः श्रुतसेननामा श्रीबादरायणमणित्थकुमारसिंहाः । श्रीविक्रमार्कनृपसंसदि संति चैते श्रीकालतंत्रकवयः स्त्वपरे मदाद्याः (२२।९).

(७) धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशंकू वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः । ख्यातो वराहमिहरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य (२२।१०).

उसके पास ३००००००० पैदल, १०००००००० सवार, २४३०० हाथी, और ४००००० नाव थीं. उसने ९५ शक राजाओंको मार अपना शक अर्थात् संवत् चलाया, और रूम देशके शक राजाको पकड़ उज्जैनमें लाया, परन्तु फिर उसको छोड़ दिया (१) आदि.

यदि उपरोक्त वृत्तान्त सत्य हो, और वास्तवमें यह पुस्तक कलियुगके ३०६८ (वि० सं० के २४) वर्ष व्यतीत होनेपर बना हो, तो प्रारंभसे ही यह संवत् विक्रमने चलाया ऐसा मानना ठीक है, परन्तु इस पुस्तकके पूर्वापर विरोधसे पाया जाता है, कि विक्रम संवत्के ६४० वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् किसी समय यह पुस्तक कालिदासके नामसे किसीने रचा है, क्योंकि उसमें अयनांश निकालनेके लिये ऐसा नियम दिया है, कि "शक संवत्मेंसे ४४५ घटाकर शेषमें ६० का भाग देनेसे अयनांश आते हैं (२)".

विक्रम संवत्के १३५ वर्ष व्यतीत होनेपर शक संवत् चला है, इसलिये यदि इस पुस्तकके बननेका समय गत कलियुग संवत् ३०६८ (वि० सं० २४) सत्य मानाजावे, तो इसमें शक संवत्का नाम नहीं होना चाहिये. शक संवत्में से ४४५ घटाना, और शेषमें ६० का भाग देना लिखनेसे स्पष्ट है, कि शक संवत् ४४५+६०=५०५ (वि० सं ६४०) गुज़रने बाद किसी समयपर यह पुस्तक बना है. इसी प्रकार प्रभवादि संवत्सर निकालनेके नियममें भी शक संवत्का (३) उपयोग किया है.

विक्रमादित्यकी सभाके विद्वानोंके जो नाम इस पुस्तकमें दिये हैं, उनमेंसे जिष्णु और वराहमिहरका समय निश्चय होगया है. जिष्णुके

---

(१) यस्याष्टादशयोजनानि कटके पादातिकोटित्रयं वाहानामयुतायुतं च नवतेस्त्रिघ्नाकृति- (२४३००) र्हस्तिनां। नौकालक्षचतुष्टयं विजयिनो यस्य प्रयाणेऽभवत् सोऽयं विक्रमभूपति- र्विजयते नान्यो धरित्रीतले (२२।१२). येनास्मिन्वसुधातले शकगणान् सर्वा दिशः संगरे हत्वा पञ्चनवप्रमान् कलियुगे शाकप्रवृत्तिः कृता० (२२।१३) यो रूमदेशाधिपतिं शकेश्वरं जीत्वा गृहीत्वोज्जयनीं महाहवे। आनीय संभ्राम्य मुमोच तं त्वहो स विक्रमार्कः समसह्यविक्रमः (२२।१७).

(२) शाकः शराम्भोधियुगोनितो (४४५) हृतो मानं खतर्कै (६०) रयनांशकाः स्मृताः (१।१८).

(३) नगै (७) र्नखैः (२०) सङ्गुणितो द्विधा शकः स खत्रिशक्रो (१४३०) ऽन्वयनाङ्ग (६२५) भाजितः। गताः स तद्भयुक्तो ऽङ्गषट् (६०) हृतोऽवशेषके स्युः प्रभवादिवत्सराः (१।१६).

पुत्र ब्रह्मगुप्तने शक संवत् ५५० (वि० सं० ६८५) में स्फुट ब्रह्मसिद्धान्त रचा (१), और वराहमिहरका मृत्यु ई० सन् ५८७ में (२) हुआ. अतएव उक्त पुस्तकमें दिया हुआ उसकी रचनाका समय, और राजा विक्रमादित्यका वृत्तान्त सत्य नहीं है, और न कविता कालिदासकी प्रतीत होती है.

इस संवत्का प्रारम्भ (३) उत्तरी हिन्दुस्तानमें चैत्र शुक्ला १ से, और गुजरात व दक्षिणमें कार्तिक शुक्ला १ से माना जाता है, इसलिये उत्तरी (चैत्रादि) विक्रम संवत्, दक्षिणी (कार्तिकादि) विक्रम संवत्से ७ महीने पहिले बैठता है. कहीं कहीं गुजरात व काठियावाड़में इसका प्रारम्भ आषाढ़ शुक्ला १ से, और राजपूतानहमें श्रावण कृष्णा १ (पूर्णिमान्त) से मानते हैं.

शक संवत् (शक)— इसके प्रारम्भके विषयमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि दक्षिणके प्रतिष्ठानपुर (पैठण) के राजा शालिवाहनने यह संवत चलाया. कितनेएक इसका प्रारम्भ शालिवाहनके जन्म दिनसे मानते (४), और कितनेएक कहते हैं, कि उज्जैनके राजा विक्रमादित्यने शालिवाहनपर चढ़ाई की, परन्तु शालिवाहनने उसको हराया, और तापी नदीके दक्षिणका देश

---

(१) श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपकालात्। पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः॥ ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितगोलवित्प्रीत्यै। त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन (स्फुट आर्यसिद्धान्त, अध्याय २४, आर्या ७, ८).

(२) रायल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल (न्युसीरीज़की जिल्द १, पृष्ठ ४०७).

उज्जैनके ज्योतिषियोंने ज्योतिषके आचार्योंके नाम व समयकी फिहरिस्त, जो डाक्टर डब्ल्यू० हंटरको दी थी, उसमें वराहमिहरका समय शक संवत् ४२७ लिखा है (कोलब्रुक्स मिसेलेनियस एसेज़, जिल्द २, पृष्ठ ४१५). डाकृर थीबोने वराहमिहरकी " पञ्चसिद्धान्तिका " बनानेका समय ई० सन्की छठी शताब्दीका मध्य नियत किया है (पञ्चसिद्धान्तिकाकी अंग्रेज़ी भूमिका, पृष्ठ ३०).

(३) वास्तवमें विक्रम संवत्का प्रारम्भ कार्तिक शुक्ला १ से, और शक संवत्का चैत्र शुक्ला १ से है, परन्तु उत्तरी हिन्दुस्तान वालोंने पीछेसे विक्रम संवत्का प्रारम्भ भी शक संवत्के साथ साथ चैत्र शुक्ला १ को मानलिया है. वि० सं० की ९ वीं शताब्दीसे १४ वीं शताब्दी तकके राजपूतानह, बुन्देलखण्ड, पश्चिमोत्तरदेश, ग्वालियर, और बिहार आदिके लेखोंमें कार्तिकादिका प्रचार चैत्रादिसे अधिक रहा पायाजाता है, पीछेसे बहुधा चैत्रादिका ही प्रचार हुआ. गुजरात और दक्षिणमें अबतक यह संवत् अपने असली प्रारम्भ (कार्तिक शुक्ला १) से चलाआता है.

(४) चंद्रकेन्द्र (१४९३) प्रमिते वर्षे शालिवाहनजन्मतः। कृतस्तपसि मार्तण्डोऽयमस्त्ययतूद्गतः (मुहूर्त मार्तण्ड, अलङ्कार, श्लोक ६).

लेकर संधि करनेके पश्चात् यह संवत् चलाया (१). प्रसिद्ध मुसलमान ज्योतिषी अलबेरुनी, जो महमूद ग़ज़नवीके साथ इस देशमें आया था, वह लिखता है, कि विक्रमादित्यने शक राजाको पराजयकर यह संवत् चलाया है (२). इस प्रकार इसके प्रारंभके विषयमें भिन्न भिन्न बातें प्रसिद्ध हैं.

शक संवत्की ११ वीं शताब्दीतकके किसी लेख या दानपत्रमें शालिवाहनका नाम नहीं पाया जाता, किन्तु "शककाल", "शक समय", "शकनृपतिसंवत्सर", "शकनृपतिराज्याभिषेकसंवत्सर", आदि शब्द इसके लिये मिलते हैं, जिनसे पाया जाता है, कि किसी शक राजाके राज्याभिषेकसे या विजय आदि किसी प्रसिद्ध कारणसे यह संवत् चला है.

शालिवाहनका नाम पहिले पहिल देवगिरि (दौलताबाद) के यादव राजा रामचन्द्रके शक संवत् ११९४ के दान पत्रमें मिला है (३). उस समयसे पहिलेके अनेक लेख और दानपत्र मिले हैं, जिनमें शक संवत्के साथ शालिवाहनका नाम न रहनेसे यह शंका उत्पन्न होती है, कि ११०० वर्षतक तो यह संवत् शक राजाके नामसे चलता रहा, और पीछेसे इसके साथ शालिवाहनका नाम कैसे जुड़ गया ?

शालिवाहन नामके पर्याय "शाल", "साल", "हाल", "सातवाहन", "सालाहण" आदि हैं (४). सातवाहन (आंध्रभृत्य) वंशके राजा इस संवत्के प्रारम्भके पहिलेसे दक्षिणमें राज्य करते थे, जिनका वृत्तान्त वायुपुराण, मत्स्यपुराण (५), विष्णुपुराण (६), और भागवतमें (७) मिलता है, और उनके कितनेएक लेख नानाघाट, कार्लि, और नाशिककी गुफाओंमें तथा अन्य स्थानोंसे मिले हैं.

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि (बम्बईकी छपी हुई, पृष्ठ २९ और ३० का नोट).

(२) अलबेरुनीज़ इंडिया (अरबी किताब "तारीख़ अलबेरुनी" का अंग्रेज़ी तर्जुमा, डाक्टर एडवर्ड सेचूका किया हुआ, जिल्द २, पृष्ठ ६).

(३) श्रीशालिवाहनशके ११९४ अंगिरासंवत्सरे आश्विन शुद्ध १५ रवौ (इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ २१४).

(४) "शालो हाले मत्स्य भेदे", "हाल: सातवाहनपार्थिवे" (हैम अनेकार्थ कोष). सालाहणम्मि हालो (देशी नाममाला, वर्ग ८, श्लोक ६६). हालो सातवाहन: (देशीनाममाला, वर्ग ८, श्लोक ६६ की टीका). शालिवाहन, शालवाहन, सालवाहण, शालवाहन, सालाहण, सातवाहन, हालेत्येकस्यनामानि (प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ २४ का नोट).

(५) मत्स्यपुराण (अध्याय २७३, श्लोक २-१७).

(६) विष्णुपुराण (अंश ४, अध्याय २४, श्लोक १७-२१).

(७) श्रीमद्भागवत (स्कन्ध १२, अध्याय १, श्लोक २२-२८).

प्रतिष्ठान पुरके राजा सातवाहन (शालिवाहन) ने "गाथासप्तशती" नामका पुस्तक रचा है, जिसकी समाप्तिमें सातवाहनके हाल और शातकर्ण (शातकर्णी) आदि उपनाम होना लिखा है (१). वासिष्ठीपुत्र पुळुमायिके १९ वें वर्षके नाशिकके लेखमें (२) शातकर्णी राजा के वृत्तान्तमें लिखा है, कि वह असिक, सुशक, मुळक, सुराष्ट्र, कुक्कुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर, और अवन्ति देशका राजा था, उसके अधिकारमें विन्ध्य, ऋक्षवत्, पारियात, सह्य, कृष्णागिरि, मंच, श्रीस्थान, मलय, महेन्द्र, षड्गिरि और चकोर पर्वत थे. बहुतसे राजा उसके आज्ञावर्ती थे, उसने शक, यवन, और पल्हवोंका नाशकर सातवाहन वंशकी कीर्ति पुनः स्थापन की, और खखरात (क्षहरात) वंशको (३) निर्मूल किया.

गाथासप्तशतीका कर्ता सातवाहन–शातकर्ण (शातकर्णी) और उपरोक्त लेखका गौतमीपुत्र शातकर्णी एकही राजा होना चाहिये. महा प्रतापी और शक लोगोंका नाश करनेवाला होनेसे ऐसा अनुमान होता है, कि शक संवत्के साथ जो शालिवाहनका नाम जुड़ा है, वह इसी राजाका नाम होगा, परन्तु वास्तवमें शक संवत् इस राजाने नहीं चलाया, क्यौंकि गौतमीपुत्र शातकर्णी शक राजाके प्रतिनिधि नहपान (क्षत्रप) से राज्य छीननेके पश्चात् प्रतापी राजा हुआ था. नहपानके जमाई उषवदात (ऋषभदत्त) और प्रधान अयमके लेखोंसे पायाजाता है, कि शक संवत् ४६ तक राजा नहपान विद्यमान था, तो स्पष्ट है, कि शातकर्णीका प्रताप शक संवत् ४६ से कुछ पीछे बढ़ा है. इसलिये शातकर्णी शक संवत्का प्रारम्भ करने वाला नहीं होसक्ता (४). इसके पीछे इसी वंश

---

(१) इति श्रीमत्कुन्तलजनपदेश्वरप्रतिष्ठानपत्तनाधीशशतकर्णोपनामकद्वीपिकर्णात्मजमलयवतीप्राणप्रिय............हालाद्युपनामकश्रीसातवाहननरेन्द्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्गुम्फिता शुचिरसप्रधाना काव्योत्तमा सप्तशत्य ७०० वसानमगात् (प्रोफेसर पीटर्सनका ई० सन् १८८४-८६ का रिपोर्ट, पृष्ठ ३४९),

(२) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया (जिल्द ४, पृष्ठ १०८, ९)

(३) नहपानके जमाई उषवदात (ऋषभदत्त), पुत्री दक्षमित्रा, और प्रधान अयमके लेखोंमें नहपानको "क्षहरात क्षत्रप" लिखा है. गौतमीपुत्र शातकर्णीको "खखरात" (क्षहरात) वंशका निर्मूल करने वाला लिखनेसे पायाजाता है, कि उसने नहपानके वंशका नाश कर उसका राज्य छीन लिया था.

(४) प्रसिद्ध भूगोल वेत्ता टालेमीने ई० स० १५१ में भूगोलका पुस्तक लिखा था, जिसमें पैठणके राजाका नाम श्रीपुळुमायि (Siro polemios) लिखा है, जो गौतमीपुत्र शातकर्णीका क्रमानुयायी था. इससे पुळुमायिका ई० स० १५१ (श० सं० ७३) के पहिलेसे राज्यकरना पायाजाता है.

के राजाओंके लेखोंमें शक संवत् न होने, किन्तु अपना अपना राज्याभिषेक काल दिये जानेसे यह पाया जाता है, कि शक संवत् इस वंशके किसी राजाका चलाया हुआ नहीं है, और शालिवाहनका नाम इस संवत्के साथ पीछेसे जुड़गया है.

शक राजा कनिष्कके [शक] संवत् ५ से २८ (?) तकके, उसके क्रमानुयायी हुविष्कके ३३ से ६५ तकके, और वासुदेवके ८० से ९८ तकके लेख मिलनेसे कितनेएक विद्वानोंका यह अनुमान है, कि शक राजा कनिष्कने यह संवत् चलाया होगा.

पंडित भगवानलाल इन्द्रजीने क्षत्रपोंके समस्त लेख और सिक्कोंपर [शक] संवत् होनेसे यह अन्तिम अनुमान किया है, कि "नहपान" ने शातकर्णीको विजयकर उसकी यादगारमें अपने स्वामी शक राजाके नामसे यह संवत् चलाया (१) हो ऐसा संभव है.

वास्तवमें यह संवत् शक जातिके किसी विदेशी राजाका चलाया हुआ है, चाहे वह कनिष्क हो या कोई अन्य. इस संवत्का प्रचार भारतवर्षमें सब संवतोंसे अधिक रहा है, और इसका प्रारंभ सर्वत्र चैत्र शुक्ला १ से माना जाता है. यह संवत् कलियुगके (४९९५-१८१६ =) ३१७९ (विक्रम संवत्के १३५) वर्ष व्यतीत होनेपर प्रारंभ हुआ है, इसलिये इसका पहिला वर्ष कलियुग सं० ३१८० (वि० सं० १३६) के मुताबिक् है. जैसे उत्तरी हिन्दुस्तानमें विक्रम संवत् लिखा जाता है, वैसे ही यह संवत् दक्षिणमें लिखा जाता है, और जन्मपत्र, पंचांग आदिमें विक्रम संवत्के साथ भारतवर्षमें सर्वत्र लिखा जाता है.

कलचुरि या चेदि संवत्— यह संवत् किस राजाने चलाया, इसका कुछ भी पता नहीं लग सक्ता, किन्तु "कलचुरि संवत्" लिखा हुआ मिलने, और कलचुरि (हैहय) वंशके राजाओंके लेखोंमें बहुधा यही संवत् होनेसे ऐसा अनुमान होता है, कि कलचुरि वंशके किसी राजाने यह संवत् चलाया होगा. इस संवत्के साथ दूसरा कोई संवत् लिखा हुआ आजतक किसी लेख या दानपत्रमें नहीं मिला, कि जिससे इसके प्रारंभका सुगमतासे निश्चय होसके.

चेदि देशके कलचुरि राजा गयकर्णदेवके लेखमें चेदि संवत् ९०२

(१) रायल एशियाटिक सोसाइटीका ई० स० १८९० का जर्नल (पृष्ठ ६४२)

है (१), और उसके पुत्र नरसिंहदेवके समयके दो लेख [चेदि] संवत् ९०७ और ९०९ के (२), और एक लेख [विक्रम] संवत् १२१६ का (३) मिलनेसे स्पष्ट है, कि विक्रमी संवत् १२१६ चेदि संवत् ९०९ के निकट होना चाहिये. इससे चेदि संवत् का प्रारंभ विक्रम संवत् (१२१६-९०९ =) ३०७ के आस पासमें आता है.

प्रथम जेनरल कनिंगहामने ई० स० १८७९ में इस संवत्का पहिला वर्ष ई० स० २५० में होना निश्चय किया था (४), परन्तु डॉक्टर कील-हार्नने बहुतसे लेख और दानपत्रोंके महीने, तिथि, और वार आदिको गणितसे जांचकर ईसवी सन् २४९ ता० २६ अगस्ट, अर्थात् विक्रम सं० ३०६ आश्विन शुक्ला १ से इस संवत्का प्रारम्भ होना निश्चय किया है (५). इस संवत्के महीने पूर्णिमान्त हैं.

मध्यहिन्दके कलचुरि राजाओंके सिवा गुजरातके चालुक्य (६) और गुर्जर राजाओंके कितनेएक दानपत्रोंमें यह संवत् दर्ज है.

कितनेएक विद्वानोंका यह भी अनुमान है, कि त्रैकूटक राजाओंके दानपत्रोंमें जो " त्रैकूटक संवत् " लिखा है वही यह संवत् है (७).

गुप्त या वल्लभी संवत्–गुप्त संवत् गुप्तवंशके राजा चन्द्रगुप्त पहिलेका चलाया हुआ प्रतीत होता है. गुप्तोंके बाद वल्लभीके राजाओंने यह संवत् जारी रक्खा, जिससे काठियावाड़में पीछेसे यही संवत् "वल्लभी

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १८, पृष्ठ २११).

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका (जिल्द २, पृष्ठ ७-१७). इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १८, पृष्ठ २११-१३).

(३) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १८, पृष्ठ २१३-१४).

(४) आर्किंयालाजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया-रिपोर्ट (जिल्द ९, पृष्ठ १११-१२). इण्डियन ईराज़ (पृष्ठ ३०).

(५) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १७, पृष्ठ २१५,२२१). एपिग्राफ़िया इण्डिका (जिल्द २, पृष्ठ २९८).

(६) दक्षिणके चालुक्य राजा पुलिकेशी पहिलेके पुत्र कीर्तिवर्मा पहिलेसे निकली हुई गुजरातकी शाखाके राजा.

(७) कलचुरि संवत्का प्रचार राजपूतानामें भी होना चाहिये, क्योंकि जोधपुर राज्यके इतिहास कार्यालयमें " दधिमती माता " के मन्दिरका संवत् २८३ श्रावण व० १३ का लेख इकट्ठा हुआ है, जिसमें कौनसा संवत् है यह नहीं लिखा, परन्तु अक्षरोंकी आकृतिपरसे अनुमान होता है, कि उस लेखमें " कलचुरी संवत् " होग.

संवत्" कहलाने लगा (१). मुसलमान ज्योतिषी अलबेरुनीने लिखा है, कि "वल्लभी संवत् शक संवत्से २४१ वर्ष पीछे शुरू हुआ है. शक संवत्मेंसे ६ का घन और ५ का वर्ग (२१६+२५=२४१) घटा देते हैं, तो शेष वल्लभी संवत् रहता है. गुप्त संवत्के लिये कहा जाता है, कि गुप्त लोग दुष्ट और पराक्रमी थे, और उनके नष्ट होने बाद भी लोग उनका संवत् लिखते रहे. गुप्त संवत् भी शक संवत्से २४१ वर्ष पीछे शुरू हुआ है. श्रीहर्ष संवत् १४८८, विक्रम संवत् १०८८, शक संवत् ९५३, और वल्लभी तथा गुप्त संवत् ७१२ ये सब परस्पर मुताबिक़ हैं" (२).

इससे गुप्त संवत् और विक्रम संवत्का अन्तर (१०८८–७१२=) ३७६, और इसका पहिला वर्ष विक्रम संवत् ३७७, और शक संवत् २४२ के मुताबिक़ होता है.

गुजरातके चौलुक्य राजा अर्जुनदेवके समयके वेरावलके एक लेखमें हिजरी सन् ६६२, विक्रम संवत् १३२०, वल्लभी संवत् ९४५, सिंह संवत् १५१ आषाढ़ कृष्णा १३ रविवार लिखा है (३). इस लेखके अनुसार वल्लभी संवत् और विक्रमी संवत्का अन्तर (१३२०-९४५=) ३७५ आता है, परन्तु यह लेख काठियावाड़का है, इसलिये इसमें विक्रमी संवत् कार्तिकादि होना चाहिये नकि चैत्रादि. इस लेखमें हिजरी सन् ६६२ लिखा है, जो विक्रम संवत् १३२० मृगशिर शुक्ला २ को प्रारम्भ हुआ, और वि० सं० १३२१ कार्तिक शुक्ला १ को समाप्त हुआ था. इसलिये हिजरी सन् ६६२ में, जो आषाढ़ मास आया वह चैत्रादि विक्रम संवत् १३२१ का, और कार्तिकादि १३२० का था. इसलिये चैत्रादि विक्रम संवत् और गुप्त या वल्लभी संवत्का अन्तर सर्वदा ३७६ वर्षका, और कार्तिकादि विक्रम संवत् और गुप्त या वल्लभी संवत्का अन्तर चैत्र शुक्ला १ से आश्विन् कृष्णा अमावास्या (अमान्त) तक ३७५ वर्षका, और कार्तिक

---

(१) वल्लभीके राजाओंने कोई नवीन संवत् नहीं चलाया, किन्तु गुप्त संवत्को ही लिखते रहे होंगे, क्योंकि इस वंशका स्थापन करने वाला सेनापति भटार्क था, जिसके तीसरे पुत्र ध्रुवसेन पहिलेके दानपत्रमें [वल्लभी] संवत् २०७ (इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द ५, पृष्ठ २०४-७) होनेसे स्पष्ट है, कि वल्लभी संवत् वल्लभीके राजाओंने नहीं चलाया, किन्तु पहिलेसे चला आता हुआ कोई संवत् है,

(२) अलबेरुनीज़ इण्डिया—मूल अरबी किताब (प्रकरण ४९, पृष्ठ २०५-६).

(३) रसूलमहमदसंवत् ६६२ तथा श्रीनृप[वि]क्रम सं १३२० तथा श्रीमद्वलभीसं ९४५ तथा श्रीसिंहसं १५१ वर्षे आषाढ वदि १३ रवावद्येह० (इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द ११, पृष्ठ २४२).

शुक्ला १ से फाल्गुन कृष्णा अमावास्या (अमान्त) तक ३७६ वर्षका रहता है (१).

इस संवत्का प्रारम्भ चैत्र शुक्ला १ से, (२) और महीने पूर्णिमान्त हैं.

प्राचीन समयमें इस संवत्का प्रचार नेपालसे काठियावाड़ तक रहा था.

श्रीहर्ष संवत्— यह संवत् थाणेश्वरके राजा श्रीहर्ष (हर्षवर्धन या हर्षदेव) ने चलाया है. अलबेरुनीने लिखा है, कि "मैंने कश्मीरके एक पंचाङ्गमें पढ़ा था, कि हर्षवर्धन विक्रमादित्यसे ६६४ वर्ष पीछे हुआ (३)".

यदि अलबेरुनीके लिखनेका अर्थ ऐसा समझा जावे, कि विक्रम संवत् ६६४ में श्रीहर्ष संवत्का पहिला वर्ष था, तो विक्रम संवत् और श्रीहर्ष संवत्का अन्तर ६६३ (ई० स० ६०६-७) होता है.

---

(१) टामस साहिबने गुप्त संवत् १ के मुताबिक ई० स० ७८-७९, जेनरल कनिंगहामने ई० स० १६७-६८, और सर क्लाईव बेलेने ई० स० १९१-९२ होना अनुमान किया था, परन्तु ई० स० १८८४ में फ्लीट साहिबको कुमारगुप्त पहिलेके समयका मालव संवत् ४९३ का लेख मिला, जिससे इन विद्वानोंका अनुमान असत्य ठहरा, क्योंकि इसी कुमारगुप्तके दूसरे लेखोंमें [गुप्त] संवत् ९६, ९८, ११३, और १२९ दर्ज हैं (देखो पृष्ठ २६, नोट ४), जो मालव (विक्रम) संवत् ४९३ के निकट होने चाहिये, परन्तु उक्त विद्वानोंके अनुमानके अनुसार ऐसा नहीं होसक्ता.

(२) गुजरात वालोंने इस संवत्का प्रारम्भ पीछेसे विक्रम संवत्के साथ कार्तिक शुक्ला १ को मानना शुरू करदिया हो ऐसा पायाजाता है. वलभीके राजा धरसेन चौथेका एक दान पत्र खेड़ासे मिला है, जिसमें [वलभी] संवत् ३३० द्वितीय मार्गशिर शुक्ला २ लिखा है (इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द १५, पृष्ठ ३४०). वलभी संवत् ३३० विक्रम संवत् (३३०+३७६ =) ७०६ के मुताबिक होता है. विक्रम संवत् ७०६ में कोई अधिक मास नहीं था, परन्तु ७०५ में अधिक मास आता है, जोकि गणितकी प्रचलित रीतिके अनुसार कार्तिक, और मध्यम मानसे मार्गशीर्ष होता है. इसलिये वलभी संवत् (७०५ - ३७६ =) ३२९ में मार्गशीर्ष अधिक होना चाहिये, परन्तु उक्त दानपत्रमें [वलभी] संवत् ३३० में मार्गशीर्ष अधिक लिखा रहनेसे अनुमान होता है, कि गुजरात वालोंने वलभी संवत् ३३० के पहिले किसी समय चैत्र शुक्ला १ को वलभी संवत्का प्रारम्भ कर ७ महीनोंके बाद फिर कार्तिक शुक्ला १ को दूसरे वलभी संवत्का प्रारम्भ करदिया होगा, अर्थात् एकही उत्तरी विक्रम संवत्में दो वलभी संवतोंका प्रारम्भ माना होगा, जिससे वलभी संवत् ३२९ के स्थान ३३० होसक्ता है. यह फिरफार काठियावाड़में वलभी संवत् ९४५ तक नहीं हुआ था.

(३) अलबेरुनीज इण्डिया-डाक्टर एडवर्ड सेचूका किया हुआ अलबेरुनीकी अरबी किताबका अंग्रेजी भाषान्तर (जिल्द २, पृष्ठ ५).

नेपालके राजा अंशुवर्माके लेखमें [श्रीहर्ष] संवत् ३४ प्रथम पौष शुक्ला २ लिखा है (१). कैम्ब्रिजके प्रोफेसर एडम्स और विएनाके डाक्टर श्रामने श्रीहर्ष संवत् ० = ई० स० ६०६ (वि० सं० ६६३) मानकर (२) गणित किया, तो ब्रह्मसिद्धान्तके अनुसार ई० स० ६४० अर्थात् विक्रम संवत् ६९७ में पौष मास अधिक आता है (३). इससे विक्रम संवत् और श्रीहर्ष संवत्का अन्तर (६९७-३४ =) ६६३, और इस संवत्का पहिला वर्ष विक्रम संवत् ६६४ (ई० स० ६०७-८) के मुताबिक् होता है. इस संवत्का प्रचार बहुधा पश्चिमोत्तर देशमें था, और ठाकुरी वंशके राजाओंके समयमें नेपालमें भी हुआ था.

अलबेरुनीने विक्रम संवत् १०८८ के मुताबिक् श्रीहर्ष संवत् १४८८ होना लिखा है (देखो पृष्ठ ३५), वह श्रीहर्ष संवत् इस संवत्से भिन्न है. उसका पता किसी लेख, दानपत्र, या पुस्तकसे आज तक नहीं लगा, केवल अलबेरुनीने ही उसका उल्लेख किया है.

गांगेय संवत्—दक्षिणसे मिले हुए गंगावंशकी पूर्वी शाखाके राजाओंके कितनेएक दानपत्र फ्लीट साहिबने इंडियन एण्टिक्वेरीमें (४) छपवाये हैं, जिनमें "गांगेय संवत्" लिखा है. यह संवत् गंगावंशके किसी राजाने चलाया होगा. इस संवत् वाले दानपत्रोंमें संवत्, मास, और दिन दिये हैं, वार किसीमें नहीं दिया, जिससे इस संवत्के प्रारम्भका ठीक ठीक निश्चय नहीं होसक्ता. महाराज इन्द्रवर्माके [गांगेय] संवत् १२८ वाले दानपत्रके हालमें फ्लीट साहिबने लिखा है, कि "गोदावरी ज़िलेसे मिले हुए राजा पृथिवमूलके दानपत्रमें (५) लिखा हुआ, युद्धमें दूसरे राजाओंके शामिल रहकर इन्द्रभट्टारकको खारिज़ करनेवाला

---

(१) सेसिल बण्डालस जर्नी इन नेपाल एण्ड नार्थर्न इण्डिया (पृष्ठ ७४-६).

(२) जेनरल कनिंगहामने अलबेरुनीके अनुसार श्रीहर्ष संवत् ० = ईसवी सन् ६०६ निश्चय किया है (बुक आफ इण्डियन ईराज़, पृष्ठ ६४).

(३) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १५, पृष्ठ ३३८).

सूर्यसिद्धान्तके अनुसार वि० सं० ६९७ (शक सं० ५६२) में भाद्रपद मास अधिक आता है. जेनरल कनिंगहामने भी अपने पुस्तक "बुक आफ इण्डियन ईराज़" में वि० सं० ६९७ में भाद्रपद अधिक लिखा है.

(४) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १३, पृष्ठ ११९-२४, २७३-७६, जिल्द १४, पृष्ठ १०-१२, जिल्द १६, पृष्ठ १३१-३४, जिल्द १८, पृष्ठ १४३-१४५).

(५) बौम्बे ब्रेंच रायल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल (जिल्द १६, पृष्ठ ११४-२०).

अधिराज इन्द्र, और इस दानपत्रका महाराज इन्द्रवर्मा एकही होना संभव है. यह इन्द्रभट्टारक उक्त नामका पूर्वी चालुक्य राजा होना चाहिये, जो जयसिंह पहिले (शक सं० ५४९ से ५७९ या ५८२ तक) का छोटा भाई, और विष्णुवर्द्धन दूसरे (शक सं० ५७९ से ५८६, या शक सं० ५८२ से ५९१ तक) का पिता था " (१). यदि फ्लीट साहिबका उपरोक्त अनुमान सत्य हो, तो इन्द्रवर्माका शक संवत् ५८० के आस पास विद्यमान होना, उसके दानपत्रका गांगेय संवत् १२८ शक संवत् ५८० से कुछ पहिले या पीछे आना, और गांगेय संवत्का प्रारम्भ (५८०-१२८= ४५२) शक संवत्की पांचवीं शताब्दीमें होना सम्भव है.

नेवार संवत् (नेपाल संवत्)—नेपालकी वंशावलीमें लिखा है, कि " दूसरे ठाकुरी वंशके राजा अभयमल्लके पुत्र जयदेवमल्लने ' नेवारी संवत् ' चलाया, जिसका प्रारम्भ ई० स० ८८० से है. जयदेवमल्ल कान्तिपुर और ललितपट्टनका राजा था, और उसके छोटे भाई आनन्दमल्लने भक्तपुर या भाटगांव तथा बेणिपुर, पनौती, नाला, धोमखेल, खडपु, चौकट, और सांगा नामके ७ शहर बसाकर भाटगांवमें निवास किया. इन दोनों भाईयोंके राज्यमें कर्णाटक वंशको स्थापन करनेवाले नान्यदेवने दक्षिणसे आकर नेपाल संवत् ९ या शक संवत् ८११ श्रावण शुदि ७ को समग्र देश (नेपाल) विजयकर दोनों मल्लों (जयदेवमल्ल और आनन्द-मल्ल) को तिरहुतकी ओर निकाल दिये (२)".

ऊपरके वृतान्तसे पाया जाता है, कि नेपाल संवत् ९ शक संवत् ८११ में था, जिससे शक संवत् और नेपाल संवत्का अन्तर (८११-९=) ८०२, और विक्रम संवत् व नेपाल संवत्का (८०२+१३५=) ९३७ आता है. उसी वंशावलीमें फिर आगे लिखा है, कि सूर्यवंशी हरिसिंहदेवने शक संवत् १२४५ या नेपाल संवत् ४४४ में नेपालदेश विजय किया (३).

इससे शक संवत् और नेपाल संवत्का अन्तर (१२४५-४४४=) ८०१, और विक्रम संवत् व नेपाल संवत्का (८०१+१३५=) ९३६ आता है.

प्रिन्सेप साहिबने नेपालके रेज़िडेन्सी सर्जन डाक्टर ब्रामलेसे मिले-हुए वृतान्तके अनुसार लिखा है, कि नेवार संवत् अक्टोबर (कार्तिक)

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १३, पृष्ठ १२०).

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १३, पृष्ठ ४१४).

(३) प्रिन्सेप्स एण्टिक्विटीज़्—युसफुल टेबल्स (जिल्द २, पृष्ठ १६६).

में शुरू होता है, और इसका ९५१ वां वर्ष ई० स० १८३१ में समाप्त होता है (१). इससे ई० स० और नेवार संवत्का अन्तर (१८३१-९५१ =) ८८० आता है.

डॉक्टर कीलहार्नने नेपालके लेख और पुस्तकोंमें इस संवत्के साथ दिये हुए मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र आदिको गणितसे जांचकर ई० स० ८७९ ता० २० अक्टोबर अर्थात् विक्रम सं ९३६ कार्तिक शुक्ला १ को इस संवत् का पहिला दिन अर्थात् प्रारम्भ होना निश्चय किया है (२). इस संवत् के महिने अमान्त हैं (३).

चालुक्यविक्रम संवत्—दक्षिणके पश्चिमी (१) चालुक्य राजा विक्रमादित्य छठे (त्रिभुवनमल्ल) ने शक संवत्की एवज़ अपने नामसे विक्रम संवत् चलाया, जो "चालुक्यविक्रमकाल" या "चालुक्यविक्रमवर्ष" नामसे प्रसिद्ध था. इसका प्रारम्भ विक्रमादित्य छठेके राज्याभिषेक-संवत्से माना जाता है. शक संवत् ९९७ में सोमेश्वर दूसरेका देहान्त होनेपर उसका छोटा भाई विक्रमादित्य छठा राजा हुआ था. येवूर-के एक लेखमें "चालुक्यविक्रम वर्ष दूसरा पिंगल संवत्सर श्रावण शुक्ला १५ रविवार चन्द्रग्रहण" लिखा है (४). बार्हस्पत्य मानका पिंगल संवत्सर दक्षिणकी गणनाके अनुसार (५) शक संवत् ९९९ में था.

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १७, पृष्ठ २४६).

(२) नेपालकी वंशावलीमें नेवार संवत् राजा जयदेवमल्लने चलाया लिखा है, परन्तु इसका प्रारम्भ दक्षिणी विक्रम संवत्की नाईं कार्तिक शुक्ला १ से, और इसके महीने भी दक्षिणके अनुसार अमान्त होनेके कारण ऐसा अनुमान होता है, कि यह संवत् दक्षिणसे आनेवाले नान्यदेवने अपनी विजयकी यादगारमें चलाया होगा.

(३) दक्षिणके चालुक्य राजा कीर्तिवर्माके तीन पुत्र थे—पुलिकेशी, विष्णुवर्द्धन, और जयसिंह, कीर्तिवर्माके देहान्त समय ये तीनों कम उम्र होनेके कारण इनका पितृव्य मंगलीश राजा हुआ, मंगलीश अपने बड़े भाईके पुत्र, जो राज्यके पूरे हक़दार थे, मौजूद होनेपर भी अपनी बाद अपने पुत्रको राज्य देनेका यत्न करने लगा, जिससे विरोध खड़ा होकर शक सं० ५३२ में मंगलीश मारा गया, बाद चालुक्य राज्यके दो विभाग हुए, पुलिकेशी पश्चिमी विभागका और विष्णुवर्द्धन (कुब्जविष्णुवर्द्धन) पूर्वी विभागका राजा हुआ, उस समयसे दक्षिणके चालुक्योंकी पश्चिमी और पूर्वी दो शाखा हुईं.

(४) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ८, पृष्ठ २०-२१, जिल्द २२, पृष्ठ १०८).

(५) मध्यम मानसे बृहस्पतिके एक राशिपर रहनेके समयको बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं (बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात्संवत्सरं सांहितिका वदन्ति-सिद्धान्तशिरोमणि १।३०), बार्हस्पत्य संवत्सर ३६१ दिन, २ घड़ी, और ५ पलका होता है, और सौरवर्ष ३६५ दिन, १५ घड़ी

इसलिये चालुक्यविक्रम संवत् २ शक संवत् ९९९ के मुताबिक़, और शक संवत् और इस संवत्का अन्तर ९९७ वर्षका है.

---

३१ पल, और ३० विपलका होता है, इसलिये बार्हस्पत्य संवत्सर सौरवर्षसे ४ दिन, १३ घड़ी, २६ पल छोटा होता है, जिससे प्रत्येक ८५ वर्ष पूरे होनेपर एक संवत्सर क्षय होजाता है. बार्हस्पत्य मान ६० वर्षका चक्र है, जिसके नाम क्रमसे ये हैं:—

१ प्रभव, २ विभव, ३ शुक्ल, ४ प्रमोद, ५ प्रजापति, ६ अङ्गिरा, ७ श्रीमुख, ८ भाव, ९ युवा, १० धाता, ११ ईश्वर, १२ बहुधान्य, १३ प्रमाथी, १४ विक्रम, १५ वृष, १६ चित्रभानु, १७ सुभानु, १८ तारण, १९ पार्थिव, २० व्यय, २१ सर्वजित्, २२ सर्वधारी, २३ विरोधी, २४ विकृति, २५ खर, २६ नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २९ मन्मथ, ३० दुर्मुख, ३१ हेमलम्ब, ३२ विलम्बी, ३३ विकारी, ३४ शार्वरी, ३५ प्लव, ३६ शुभकृत्, ३७ शोभन, ३८ क्रोधी, ३९ विश्वावसु, ४० पराभव, ४१ प्लवङ्ग, ४२ कीलक, ४३ सौम्य, ४४ साधारण, ४५ विरोधकृत्, ४६ परिधावी, ४७ प्रमादी, ४८ आनन्द, ४९ राक्षस, ५० अनल, ५१ पिङ्गल, ५२ कालयुक्त, ५३ सिद्धार्थी, ५४ रौद्र, ५५ दुर्मति, ५६ दुंदुभि, ५७ रुधिरोद्गारी, ५८ रक्ताक्षी, ५९ क्रोधन, और ६० क्षय.

वराहमिहरने कलियुगका पहिला वर्ष विजय संवत्सर माना है, परन्तु ज्योतिषतत्त्वकारने प्रभव माना है. उत्तरी हिन्दुस्तानमें इसका प्रारम्भ बृहस्पतिके राश्यंतरसे माना जाता है, परन्तु व्यवहारमें चैत्र शुक्ला १ से नया संवत्सर लिखते हैं. विक्रम संवत् १९५१ के पंचाङ्गमें पराभव संवत्सर लिखा है, जो चैत्र शुक्ला १ से चैत्र कृष्णा अमावास्या तक (एक वर्ष) माना जायेगा, परन्तु उसी पंचाङ्गमें लिखा है, कि (स्पष्टमानसे) विक्रम संवत् १९५१ के प्रारम्भसे ६ महीने, १६ दिन, ४५ घड़ी, और ३६ पल पूर्व पराभव संवत्सरका प्रारम्भ होगया था (काशीके ज्योतिषप्रकाश यन्त्रालयका छपा हुआ वि० सं० १९५१ का पंचाङ्ग).

वराहमिहरके मतसे उत्तरी बार्हस्पत्य वर्षका नाम निकालनेका नियम यह है:—

इष्ट गत शक संवत्को ११ से गुणो, गुणनफलको ४ से गुण उसमें ८५८९ जोड़दो, फिर योगमें ३७५० का भाग देनेसे जो फल आवे उसको इष्ट शक संवत्में जोड़दो, योगमें ६० का भाग देनेसे, जो शेष रहे वह प्रभवादि गत संवत्सर होगा (गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकालाद्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः। नवाष्टपञ्चाष्टयुतानिकृत्वा विभाजयेच्छून्यशरागरामैः॥ फलेन युक्तं शकभूपकालं संशोध्यषष्ट्या............शेषाः क्रमशः समाःस्युः॥ वाराही संहिता अध्याय ८, श्लोक २०-२१).

उदाहरण— विक्रम संवत् १९५१ में बार्हस्पत्य संवत्सर कौनसा होगा?

विक्रम संवत् १९५१ = शक संवत् (१९५१-१३५ =) १८१६ गत.

$१८१६ \times ११ = १९९७६ \times ४ = ७९९०४ + ८५८९ = ८८४९३ \div ३७५० = २३\frac{२२४३}{३७५०}$.

२३+१८१६ = १८३९   ६०) १८३९ (३०
१८०

३९ गत संवत्सर, वर्तमान ४० वां पराभव.

कुर्तकोटिके एक लेखमें "चा० वि० वर्ष ७ दुंदुभि संवत्सर पौष

दक्षिणमें बार्हस्पत्य संवत्सर लिखा जाता है, परन्तु वहां इसका बृहस्पतिकी गतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, बार्हस्पत्य वर्षको सौर वर्षके बराबर मानते हैं, जिससे क्षय संवत्सर मानना नहीं पड़ता, और केवल प्रभवादि ६० संवत्सरोंके नामसेही प्रयोजन रहता है, और कलियुगका पहिला वर्ष प्रमाथी संवत्सर मानकर प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला १ से क्रम पूर्वक नवीन संवत्सर लिखा जाता है.

दक्षिणी बार्हस्पत्य संवत्सरका नाम निकालनेका नियम नीचे अनुसार है:—

इष्ट गत शक संवत्में १२ जोड़ ६० का भाग देनेसे, जो शेष रहे, वह प्रभवादि वर्तमान संवत्सर होगा; या इष्ट गत कलियुग संवत्में १२ जोड़ ६० का भाग देनेसे, जो शेष रहे, वह प्रभवादि गत संवत्सर होगा,

उदाहरण—शक संवत् १८१६ में बार्हस्पत्य संवत्सर कौनसा होगा ?

१८१६+१२=१८२८   ६०) १८२८ (३
                              १८०
                              ———
                     २८ वां जय संवत्सर वर्तमान.

श० सं० १८१६ = कलियुग संवत् (१८१६+३१७९ =) ४९९५+१२ = ५००७

६०) ५००७ (८३
   ४८०
   ———
   २०७
   १८०
   ———
   २७ गत संवत्सर, वर्तमान २८ वां जय संवत्सर.

(प्रमाथी प्रथमं वर्षं कल्पादौ ब्रह्मणा स्मृतं । तदादि षष्ठिहृच्छाके शेषं चांद्रोऽत्र वत्सरः ॥ व्यावहारिकसंज्ञोयं काल : स्मृत्यादिकर्मसु । योज्य : सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे— पैतामहसिद्धान्त).

उत्तरी हिन्दुस्तानके प्राचीन लेखोंमें बार्हस्पत्य संवत्सर लिखनेका प्रचार बहुत कम था, परन्तु दक्षिणमें अधिक था.

इसके अतिरिक्त एक दूसरा बार्हस्पत्य मान भी है, जो १२ वर्षका चक्र है, जिसके संवत्सरोंके नाम चैत्रादि १२ महीनोंके अनुसार हैं, परन्तु बहुधा महिनोंके नामके पहिले "महा" लगाया जाता है, जैसे कि महाचैत्र, महावैशाख आदि.

सूर्य समीप आनेसे बृहस्पति अस्त होकर सूर्यके आगे निकल जानेपर जिस नक्षत्रपर फिर उदय होता है, उस नक्षत्रके अनुसार संवत्सरका नाम नीचे अनुसार रक्खा जाता है:—

कृत्तिका या रोहिणीपर उदयहोतो महाकार्तिक; मृगशिर या आर्द्रापर महामार्ग; पुनर्वसु या पुष्यपर महापौष; अश्लेषा या मघापर महामाघ; पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी या हस्तपर महाफाल्गुन; चित्रा या स्वातिपर महाचैत्र; विशाखा या अनुराधापर महा-वैशाख; ज्येष्ठा या मूलपर महाज्येष्ठ; पूर्वाषाढा या उत्तराषाढापर महाआषाढ़; श्रवण या धनिष्ठापर महाश्रावण; शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा या उत्तराभाद्रपदापर महाभाद्रपद; और

शुक्ला ३ रविवार उत्तरायण संक्रान्ति और व्यतीपात" लिखा है (१). दक्षिणी गणनाके अनुसार दुंदुभि संवत्सर शक संवत् १००४ में था (२). इससे भी शक संवत् और इस संवत्का अन्तर (१००४-७ =) ९९७ आता है.

इसलिये इसका पहिला वर्ष शक संवत् ९९८ (विक्रम संवत् ११३३ = ई० स० १०७६-७७) के मुताबिक होता है. इसका प्रारम्भ चैत्र शुक्ला १ से है. इस संवत्का प्रचार दक्षिणमें ही रहा था.

लक्ष्मणसेन संवत्—बंगालके सेनवंशी राजा बल्लालसेनके पुत्र लक्ष्मणसेनने यह संवत् चलाया था. इसका प्रारम्भ तिरहुतमें माघ शुक्ला १ से मानाजाता है. इसके प्रारम्भका निश्चय करनेके लिये जो जो प्रमाण मिलते हैं, वे एक दूसरेके विरुद्ध हैं.

१- तिरहुतके राजा शिवसिंहदेवके दानपत्रमें "ल० सं० (लक्ष्मणसेन संवत्) २९३ श्रावण सुदि ७ गुरौ" लिख अन्तमें "सन् ८०१ संवत (त्) १४५५ शाके १३२१" लिखा है (३), जिससे यदि इसका प्रारम्भ

रेवती, अश्विनी या भरणीपर उदय हो तो महाआश्वयुज संवत्सर कहलाता है (नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री । तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥ वर्षाणि कार्तिकादी-न्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि । क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्-वाराही संहिता अध्याय ८, श्लोक १-२).

इस बार्हस्पत्य मानके संवत्सर प्राचीन दानपत्र आदिमें बहुत कम मिलते हैं, परिव्राजक महाराज हस्तीके दानपत्रोंमें महाचैत्र, महावैशाख, महाआश्वयुज, और महामाघ; परिव्राजक महाराज संक्षोभके एक दानपत्रमें महामाघ, और कदम्बवंशी मृगेशवर्माके दानपत्रमें वैशाख और पौष संवत्सर लिखे हुए मिले हैं.

(१) इण्डियन एण्टिक्केरी (जिल्द ८, पृष्ठ १९१, जिल्द २२, पृष्ठ १०९).

(२) जेनरल कनिंगहामस बुक आफ इण्डियन ईराज़ (पृष्ठ १९३).

(३) जी० ए० ग्रियर्सन साहिबने यह दानपत्र विद्यापति और उसके समकालीन पुरुषोंके हालमें छपवाया है (इण्डियन एण्टिक्केरी जिल्द १४, पृष्ठ १९०-९१), जिसमें ल० सं० २८३ छपा है, परन्तु उसके आगे "अब्दे लक्ष्मणसेनभूपतिमिते वह्निग्रहद्व्यङ्किते (२९३)" दिया है, जिससे स्पष्ट है, कि उक्त दानपत्रमें लक्ष्मणसेन संवत् २९३ है, न कि २८३, ऐसेही "सन् ८०७" छपा है, वह भी ८०१ होना चाहिये, क्योंकि शक संवत् १३२१ श्रावण सुदि ७ को हिजरी सन् ८०१ ता० ६ ज़िलकाद था, शक संवत् १३२१ के मुताबिक [विक्रम] संवत् १४५५ दिया है, जो दक्षिणी विक्रम संवत् है, क्योंकि हिजरी सन् ८०१ उत्तरी विक्रम सं० १४५५ आश्विन शुक्ला २ को प्रारम्भ, और १४५६ आश्विन शुक्ला १ को समाप्त हुआ, अतएव

माघ शुक्ला १ से मानाजावे, तो ल० से० संवत् ० = शक संवत् १०२७-२८ (विक्रम संवत् ११६२-६३) आता है, जिससे संवत् १ शक संवत् १०२८-२९, विक्रम संवत् ११६३-६४ के मुताबिक़ होता है.

२- द्विजपत्रिकाके ता० १५ मार्च सन् १८९३ के अंकमें लिखा है, कि "बल्लालसेनके पीछे उनके बेटे लक्ष्मणसेनने शक संवत् १०२८ में बंगालके सिंहासनपर बैठ अपना नया शक चलाया. वह बहुत दिन तक चलता रहा, और अब सिर्फ़ मिथिलामें कहीं कहीं लिखा जाता है". इस लेखके अनुसार वर्तमान लक्ष्मणसेन संवत् १ शक संवत् १०२८-२९ के मुताबिक़ होता है.

३- .ई० स० १८७८ में डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्रने लिखा है, कि "तिरहुतके पंडित इसका प्रारम्भ माघ शुक्ला १ से मानते हैं, अतएव इसका प्रारम्भ .ई० स० ११०६ के जनवरी (वि० सं० ११६२, शक सं० १०२७) से होना चाहिये (१)." मुनशी शिवनन्दन सहायने "बंगालका इतिहास" नामक पुस्तकके पृष्ठ २० में लिखा है, कि "लक्ष्मण बंगालमें नामी राजा हुआ. इसके नामका संवत् अबतक तिरहुतमें प्रचलित है. माघ शुक्ल पक्षसे इसकी गणना होती है. जनवरी सन् ११०६ .ई० (वि० सं० ११६२ माघ) से यह संवत् पहिले पहिल प्रारम्भ हुआ".

इससे इस संवत्का पहिला वर्तमान वर्ष शक संवत् १०२७-२८, विक्रम संवत् ११६२-६३ के मुताबिक़ होता है.

४- मिथिलाके पंचांगोंमें शक, विक्रम, और लक्ष्मणसेन संवत् तीनों लिखे जाते हैं, परन्तु उनके अनुसार शक संवत् और लक्ष्मणसेन संवत्का अन्तर एकसा नहीं आता, किन्तु लक्ष्मणसेन संवत् १ शक संवत् १०२६-२७, १०२७-२८, १०२९-३०, और १०३०-३१ के मुताबिक़ आता है (२). ऊपर लिखे हुए प्रमाणोंसे इस संवत्का प्रारम्भ शक संवत् १०२६ से १०३१ के बीचके किसी संवत्में होना चाहिये.

५- अबुलफ़ज़लने अकबरनामेमें तारीख़ इलाही प्रचलित करनेके फ़र्मानमें लिखा है, कि "बंगदेशमें लछमनसेनके राज्यके प्रारम्भसे संवत्

हिजरी सन् ८०१ में, जो श्रावण मास आया, वह उत्तरी वि० सं० १४५६ का, और दक्षिणी वि० सं० १४५५ का था, इससे पायाजाता है, कि वि० सं० की १५ वीं शताब्दीमें बङ्गालमें विक्रम संवत् दक्षिणी गणनाके अनुसार चलता रहा होगा.

(१) एशियाटिक सोसाइटी बङ्गालका जर्नल (जिल्द ४७, हिस्सा १, पृष्ठ ३९८),

(२) बुक आफ़ इण्डियन ईराज़ (पृष्ठ ७६-७८).

गिनाजाता है. उस समयसे आजतक ४६५ वर्ष हुए हैं. गुजरात और दक्षिणमें शालिवाहनका संवत् है, जिसके इस समय १५०६, और मालवा तथा दिल्ली आदिमें विक्रमादित्यका संवत् चलता है, जिसके १६४१ वर्ष व्यतीत हुए हैं" (१). इससे शक संवत् और इस संवत्का अन्तर कितने-एक महिनों तक (१५०६-४६५ =) १०४१ आता है.

६- डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्रने "स्मृतितत्वामृत" नामक हस्तलिखित पुस्तकके अन्तमें "ल० सं ५०५। शाके १५४६" होना लिखा है (२), जिससे शक संवत् और इस संवत्का अन्तर अबुलफ़ज़्लके लिखे अनुसार ही आता है.

राजा शिवसिंहदेवके दानपत्र और पंचाङ्ग वगैरहसे इस संवत्का प्रारम्भ शक संवत् १०२८ के आस पास, और स्मृतितत्वामृत व अबुलफ़ज़्लके लिखे अनुसार शक संवत् १०४१ में आता है.

डॉक्टर कीलहार्नने एक लेख और पांच पुस्तकोंमें लक्ष्मणसेन संवत्के साथ दिये हुए महीने, पक्ष, तिथि, और वार आदिको गणितसे जांचकर देखा, तो मालूम हुआ, कि गत शक संवत् १०२८ मृगशिर शुक्ला १ को इस संवत्का पहिला दिन अर्थात् प्रारम्भ मानकर गणित कियाजावे, तो उन ६ में से ५ तिथियोंके वार तो ठीक मिलते हैं (३), परन्तु गत कलियुग संवत् १०४१ कार्तिक शुक्ला १ को इस संवत्का पहिला दिन, और महीने अमान्त मानकर गणित किया, तो छओं तिथियोंके वार आमिलते हैं (४). यदि अबुलफ़ज़्लका लिखना सत्य मानाजावे तो, पंचांगोंका संवत् बिल्कुल असत्य ठहरता है, और राजा शिवसिंहका दानपत्र जाली मानना पड़ता है, परन्तु उक्त दानपत्रको जाली ठहरानेके लिये कोई प्रमाण नहीं मिला, बरन उसकी तिथिको गणितसे जांचा जावे तो गुरुवार भी आमिलता है (५).

अबुलफ़ज़्लने लक्ष्मणसेनका राज केवल ८ वर्ष माना है (६), परन्तु

(१) एशियाटिक सोसाइटी बङ्गालका जर्नल (जिल्द ५७, हिस्सह १, पृष्ठ १-२). हिजरी सन् १२८४ का लखनऊका छपा हुआ अकबरनामा (जिल्द २, पृष्ठ १४).

(२) नोटिसीज़ आफ़ सस्कृत मैनुस्क्रिप्टस (जिल्द ६, पृष्ठ १३).

(३) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १९, पृष्ठ ५).

(४) " " (जिल्द १९, पृष्ठ ६).

(५) बुक आफ़ इण्डियन ईराज़ (पृष्ठ ७८), इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १९, पृष्ठ ५-६)

(६) एशियाटिक सोसाइटी बङ्गालका जर्नल (जिल्द ३४, हिस्सह १, पृष्ठ १३७).

लक्ष्मणसेनके मन्त्री हलायुधने अपने "ब्राह्मणसर्वस्व" नामक पुस्तकमें लिखा है, कि "लक्ष्मणसेनने मेरी बाल्यावस्थामें मुझे राजपंडित, युवावस्थामें प्रधान, और वृद्धावस्थामें धर्माधिकारी बनाया" (१). हलायुधकी बाल्यावस्थासे वृद्धावस्था तक लक्ष्मणसेन राजा विद्यमान था, जिससे उसका राज्य ८ वर्ष नहीं, किन्तु अधिक वर्षोंतक होना चाहिये. इससे स्पष्ट है, कि अबुलफ़ज़ल भी लक्ष्मणसेनके इतिहाससे भलीभांति वाक़िफ़ नहीं था. ऐसी दशामें जब तक आधिक तिथियें न मिलें, और उनको गणितसे जांचकर न देखाजावे, तब तक अबुलफ़ज़लके लेखपर ही भरोसाकर शिवसिंहदेवका दानपत्र, जो अबुलफ़ज़लसे बहुत पहिलेका है, जाली नहीं कहसक्ते. पंचांगोंके अनुसार इस संवत्का प्रारम्भ जो १०२६ से १०३१ के बीच आता है, सो भी उक्त दानपत्रसे क़रीब क़रीब आमिलता है.

सिंह संवत्—यह संवत् सौराष्ट्रके मंडलेश्वर सिंहने अपने नामसे प्रचलित किया था.

१- चौलुक्य राजा कुमारपालके समयके मांगरोलके एक लेखमें विक्रम संवत् १२०२ और सिंह संवत् ३२ आश्विन वदि १३ सोमवार लिखा है (२). इस लेखका विक्रम संवत् कार्तिकादि नहीं, किन्तु आषाढ़ादि है. इस लेखके अनुसार विक्रम संवत् और सिंह संवत्का अन्तर (१२०२-३२ =) ११७०, और सिंह संवत् १ आषाढ़ादि विक्रम संवत् ११७१ के मुताबिक़ होता है.

२- चौलुक्य राजा भीमदेव दूसरेके दानपत्रमें विक्रम संवत् १२६६ और सिंह संवत् ९६ मार्गशिर शुदि (३) चतुर्दशी गुरुवार लिखा

---

(१) बाल्ये ख्यापितराजपण्डितपदः श्वेतांशुबिम्बोज्वलच्छत्रोत्सिक्तमहामहत्तमपदं दत्वा नवे यौवने। यस्मै यौवनशेषयोग्यमखिलक्ष्मापालनारायणः श्रीमान् लक्ष्मणसेनदेवनृपतिर्धर्म्माधिकारं ददौ॥ (ब्राह्मणसर्वस्व).

(२) श्रीमद्विक्रमसंवत् १२०२ तथा श्रीसिंहसंवत् ३२ आश्विनवदि १३ सोमे (भावनगरप्राचीनशोधसंग्रह भाग १, पृष्ठ ७)

(३) "शुदि" या "सुदि" और "बदि" या "वदि" का अर्थ "शुक्लपक्ष" और "कृष्णपक्ष" माना जाता है, परन्तु वास्तवमें इनका अर्थ "शुक्लपक्षका दिन" और "कृष्णपक्षका दिन" है. ये खास शब्द नहीं हैं, किन्तु दो दो शब्दोंके संक्षिप्त रूप मात्र हैं. प्राचीन लेखोंके देखनेसे प्रतीत होता है, कि पहिले बहुधा संवत्, ऋतु (ग्रीष्म, वर्षा, और हेमन्त प्रत्येक चार चार मास या ८ पक्षको), मास या पक्ष, और दिन लिखनेका प्रचार था, परन्तु पीछेसे संवत्, मास, पक्ष और दिन अर्थात् तिथि लिखने लगे, जिनको कभी कभी पूरे शब्दोंमें, और कभी कभी संक्षेपसे भी लिखते थे, जैसे कि संवत्सरको "संवत्", "सं" या

है (१). इस दानपत्रके अनुसार भी विक्रम संवत् और सिंह संवत्का अन्तर (१२६६-९६ =) ११७० आता है.

३- चौलुक्य (वाघेला) अर्जुनदेवके समयके वेरावलके लेखमें विक्रम संवत् १३२० और सिंह संवत् १५१ आषाढ़ कृष्णा १३ लिखा है (देखो पृष्ठ ३५, नोट ३). इस लेखका विक्रमी संवत् कार्तिकादि है. (देखो पृष्ठ ३५) जो चैत्रादि विक्रम संवत् १३२१ होता है. इससे विक्रम संवत् और सिंह संवत्का अन्तर (१३२१-१५१ =) ११७०, और सिंह संवत् १ विक्रम संवत् ११७१ के मुताबिक़ होता है. इस संवत्का प्रारम्भ आषाढ़ शुक्ला १ से है. इसका प्रचार काठियावाड़में ही रहा था.

कोलम संवत् (कोलम्ब संवत्)—यह संवत् मलबार और कोचीनकी ओर कहीं कहीं लिखाजाता है. इसका प्रारम्भ शक संवत् ७४७ से मानाजाता है (२).

"सं", ग्रीष्मको "ग्रि" या "ग्र", वर्षाको "व", हेमन्तको "हे", शुक्लपक्षको "शु", बहुल (कृष्ण) पक्षको "ब", और दिवसको "दि", कभी कभी ऋतु और मासके लिये केवल ऋतुके नामका पहिला अक्षर, और पक्ष व दिनके लिये पक्षके नामका पहिला अक्षर लिखते थे, जैसे कि "हेमन्तमासे प्रथमे" के लिये "हे १", और "श्रावणबहुलपक्षदिवसे त्रयोदशे" के लिये "श्रावण ब १३" आदि. इसी प्रकार पक्ष और दिन को संक्षेपसे लिखनेसे शुक्लपक्ष या शुद्धके लिये "शु", और "दिवसे" के लिये "दि" (शु दि) लिखा जाता था. महानामन्के बुद्ध गयाके लेखमें "सवत् २०० ६० ८ (= २६८) चैत्र शु दि ७" लिखा है. उक्त लेखमें "शु" और "दि" अक्षर स्पष्ट अलग अलग लिखे हैं. भारतवर्षमें शब्दोंके बीच जगह छोड़कर लिखनेका बहुधा रिवाज न होनेके कारण वाक्यके कुल शब्द साथ लिख दिये जाते थे. ऐसे ही ये दोनों अक्षर (शु दि) भी शामिल लिखे जाने लगगये, जिससे "शुदि" बना है. भाषामें "श" के स्थान "स" लिखते हैं, जिससे "शुदि" के स्थान पर "सुदि" भी लिखने लगगये.

ऐसे ही बहुल (कृष्ण) पक्ष का "ब" और दिवसका "दि" शामिल लिखे जानेसे "बदि" बना है, और "बदि" को "वदि" भी लिखते हैं (बवयोरैक्यम्).

विक्रम-सम्वत्की ११ वीं शताब्दी तक ये शब्द "शुक्लपक्ष" और "कृष्णपक्ष" के स्थानपर तिथियोंके पहिले लिखे हुए अबतक नहीं पायेगये (श्रावण सुदि पञ्चम्यां तिथौ) परन्तु पीछेसे इस तरह भूलसे लिखने लगगये हैं. "शुदि और बदि" में दिवस शब्द होनेके कारण फिर तिथि लगाना अशुद्ध है. "सुदि और वदि" के बाद केवल अंक आना चाहिये.

(१) श्रीविक्रमसंवत् १२६६ वर्षे श्रीसिंहसंवत् ९६ वर्षे........मार्गशुदि १४ गुरौ (इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द २२, पृष्ठ १०८).

(२) इसको परशुराम संवत् भी कहते हैं, और १००० वर्षका चक्र मानते हैं. वास्तवमें यह चक्र नहीं किन्तु संवत्ही है, जिसका प्रारम्भ ई० स० ८२५ ता० २५ अगस्तसे है.

प्राचीन अङ्क.

प्राचीन लेख और दानपत्र आदिके अंकोंके देखनेसे ज्ञात होता है, कि प्राचीन और अर्वाचीन लिपियोंकी तरह अंकोंमें भी अन्तर हैं. यह अन्तर केवल उनकी आकृतिमें ही नहीं, किन्तु लिखनेकी रीतिमें भी पाया जाता है. वर्तमान समयमें १ से ९ तक अंक, और शून्यसे अंकविद्याका सम्पूर्ण व्यवहार चलता है, और हरएक अंक एकाई, दहाई, सैंकड़ा, हज़ार, लाख आदिके स्थानोंमें आसक्ता है. स्थानके अनुसार एक ही अंकसे भिन्न भिन्न संख्या प्रकट होती हैं, जैसे १११११११ में छओं एकके ही अंक हैं, परन्तु पहिलेसे १००००००, दूसरेसे १०००००, तीसरेसे १०००, चौथेसे १००, पांचवेसे १०, और छठेसे १ समझा जाता है; और खाली स्थान बतलानेके लिये शून्य ० लिखते हैं. लेखोंके सम्बन्धमें इसको नवीन क्रम कहना चाहिये, क्योंकि प्राचीन क्रम इससे भिन्न था.

प्राचीन क्रममें शून्यका व्यवहार नहीं था, और न एकही अंक एकाई, दहाई, सैंकड़ा आदि भिन्न भिन्न स्थानोंपर आसक्ता था, क्योंकि उक्त क्रममें भिन्न भिन्न स्थानोंके लिये भिन्न भिन्न चिन्ह थे, अर्थात् १ से ९ तकके ९ चिन्ह, और १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० व १००० इनमेंसे प्रत्येकके लिये भी एक एक चिन्ह नियत था. इस प्रकार ९ एकाईके, ९ दहाईके, १ सौ का, और १ हज़ारका मिल कुल २० चिन्ह या अंक थे, जिनसे ९९९९९ तककी संख्या लिखी जासक्ती थी. लाख, करोड़, अरब आदिके लिये कैसे चिन्ह थे, उनका पता आज तक नहीं लगा, क्योंकि किसी लेख, दानपत्र आदिमें लाख या उससे आगेका कोई चिन्ह नहीं मिला है.

इन अंकोंके लिखनेका क्रम १ से ९ तक तो ऐसाही था, जैसा कि आज है. १० के लिये १ और ० नहीं, किन्तु १० का नियत चिन्ह मात्र लिखा जाता था; ऐसेही २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० और १००० के लिये भी अपना अपना चिन्ह मात्र लिखा जाता था (देखो लिपिपत्र ४१, ४२, ४३). ११ से ९९ तकके लिखनेका क्रम ऐसा था, कि पहिले दहाईका अंक लिख, उसके आगे एकाईका अंक रक्खा जाता था, जैसे कि १५ के लिये पहिले १० का चिन्ह लिख उसके आगे ५, ऐसेही ३५ के लिये ३० और ५, ६२ के लिये ६० और २ आदि.

२०० के लिये १०० का चिन्ह ᥫ लिख उसकी दाहिनी ओर

कुछ नीचेको झुकी एक छोटीसी लकीर लगादी जाती थी ∿. ३०० के लिये १०० के चिन्हके साथ ऐसीही दो लकीरें लगाते थे ∿. ४०० से ९०० तकके लिये १०० का चिन्ह लिख उसके साथ क्रम पूर्वक ४ से ९ तकके अंक एक छोटीसी लकीरसे जोडदेते थे. १०१ से १९९ के बीचके अंकोंके लिये यह नियम था, कि १०० का अंक लिख उसके आगे दहाई और एकाईके अंक लिखे जाते थे, जैसे कि १८९ के लिये पहिले १०० का अंक लिख उसके आगे ८० और ९, और ऐसेही ३८६ के लिये ३००, ८०, और ६ लिखते थे. ऐसे अंकोंमें दहाईका कोई अंक न हो, तो सैंकडाके अंकके साथ एकाईका अंक लिखते थे, जैसे कि १०१ लिखने हो तो १०० के साथ १ का अंक लिखा जाता था. (देखो लिपिपत्र ४३ वां).

२००० के लिये १००० के चिन्ह ၅ की दाहिनी ओर उपरको छोटीसी एक सिधी लकीर ၅, और ३००० के लिये ऐसीही दो लकीरें लगाते थे ၅. ४००० से ९००० तक, और १००००, २००००, ३००००, ४००००, ५००००, ६००००, ७००००, ८०००० व ९०००० के लिये १००० के चिन्हके आगे क्रमसे ४ से ९ तकके, और १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८० व ९० के चिन्ह छोटोसी लकीरसे जोड देते थे (देखो लिपिपत्र ४३ वां).

११००० के वास्ते १०००० लिख पासही १००० लिखते थे. ऐसेही २१००० के लिये २०००० और १०००, २४००० के लिये २०००० और ४०००, और ९९००० के लिये ९०००० व ९००० लिखते थे. इसी प्रकार ११५८२ के वास्ते १००००, १०००, ५००, ८० व २; और ९९९९९ के लिये ९००००, ९०००, ९००, ९० और ९ लिखते थे.

प्राचीन अंकोंके देखनेसे प्रतीत होता है, कि उनमेंसे बहुतसे वास्तवमें अक्षर हैं, जिनमें भी समयके साथ अक्षरोंकी नांई फ़र्क पड़ता गया है. १, २, और ३ के लिये तो क्रमसे –, = और ≡ आडी लकीरें हैं. ६ का अंक 'फ'; ७ का 'ग्र'; २० का 'थ'; ३० का 'ल'; ४० का 'प्त'; १०० का 'सु', 'शु' या 'श'; २०० का 'शू' या 'सू'; और १००० का 'नौ' तथा 'भ्र' अक्षर होना स्पष्टही पाया जाता है. बाक़ीमेंसे ४ का अंक "×क" (जिह्वामूलीय और 'क'), ५ का 'तृ', ८ का 'ह्र', ९ का 'ओ' (जैसा कि 'ॐ' में लिखा जाता है), और १० का अंक 'ळ' अक्षरसे मिलता जुलता है. ८० और ९० के अंक उपध्मानीय और जिह्वामूलीयके चिन्हसे हैं. नेपालके लेखोंमें, कन्नोजके राजा महेन्द्रपाल और विनायकपालके दानपत्रोंमें, तथा महानामन्के बुद्धगयाके लेखमें अंकोंके

स्थानपर उस समयकी प्रचलित लिपिके अक्षर लिखे हैं (१). पण्डित भगवानलाल इन्द्रजीने नेपालमें कितनेएक ताड़पत्र और कागज़पर लिखे-हुए ग्रन्थोंके पत्रोंपर एक किनारे अंक, और दूसरे किनारेपर उन्हीं अंकोंको बतलानेवाले अक्षर लिखे हुए पाये, जो बहुधा प्राचीन अंकोंके चिन्होंसे मिलते हुए हैं. इसी प्रकार अंक और अक्षर दोनों लिखे हुए ताडपत्रके बहुतसे जैन पुस्तक खंभातमें शांतिनाथके भंडारमें तथा अन्य अन्य स्थानोंमें भी हैं.

भिन्न भिन्न पुस्तकोंमें अंकोंके लिये नीचे अनुसार अक्षर व चिन्ह पाये गये हैं:-

१=ए, स्व और ॐ. २=द्वि, स्ति और न. ३=त्रि, श्री और मः. ४=ण्क, र्ण्क, ष्क, र्ष्क, [illegible], [illegible], पु, [illegible] और र्फ्क. ५=तृ, र्तृ, र्नृ, हृ और र्नृ. ६=र्फ्रु, र्फ्र, र्फ्रु, फ्रु, पुं, ग्या, भ्र और फ्रु. ७=ग्र्रा, ग्रा और ग्र. ८=ह्र्रा, ह्रृ, ह्रा और द्र. ९=ओं, ॐ, ॐ, उं, उं, अ और र्नु. १०=र्लृ, लृ, अ और र्ता. २०=थ, था, र्थं, र्था, घ, र्घ, प्व, व और ॐ. ३०=ल, ला और र्ला. ४०=प्त, र्प्त, प्ता और प्र. ५०=[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और णू. ६०=थु, र्थु, र्थूं, थू, र्घ, र्घु, घु, चु, वु और ग्वु. ७०=र्घू, घू, र्थूं, चू और र्म्त. ८०=[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और पु. ९०=[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और ⊗. १००=सु, सू, अ और लु. २००=सू, र्सू, सु, आ, लू और र्घू. ३००=स्ता, सा, सु, सुं और सू. ४००=स्तो और स्ता.

१, २ और ३ के लिये क्रमसे ए, द्वि, त्रि; स्व, स्ति, श्री; और ॐ, न, मः, लिखते हैं, जो प्राचीन क्रमसे नहीं है. ए, द्वि और त्रि तो उन्हीं अंक-वाची शब्दोंके पहिले अक्षर हैं, परतु स्व, स्ति, श्री; और ॐ, न, मः, ये नवीन कल्पित हैं. एक ही अंक के लिये भिन्न भिन्न अक्षरोंके होनेका कारण ऐसा पाया जाता है, कि कुछ तो प्राचीन अक्षरोंके पढ़नेमें, और कुछ पुस्तकोंकी नकल करनेमें लेखकोंने गलती की है, जैसे कि १०० का चिन्ह 'सु', प्राचीन लिपिमें 'अ' से बहुत कुछ मिलता हुआ है, जिसको गलतीसे 'अ' लिखने लगगये. नैपालके लेखोंमें १०० का चिन्ह

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ६, पृष्ठ १६३-१८२). सेसिल बेण्डाल्स जर्नी इन नैपाल एण्ड नार्थर्न इण्डिया (पृष्ठ ७२-८१). इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १५, पृष्ठ ११२-१३, १४०-४१). कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, पृष्ठ २०६-८७).

'अ' लिखा है, जिसका कारण 'सु' को 'अ' पढनाही है. इसी तरह २० का चिन्ह 'थ' है, जिसकी आकृति पुराणे पुस्तकोंमें 'घ' से मिलती हुई होनेसे लेखकोंने 'थ' को 'घ', फिर 'घ' को 'प्व', और 'प्व' को 'व' लिखा है. इसी प्रकार ५ के चिन्ह 'तृ' को 'ह' और 'र्तृ' भी लिखा है. ऐसेही दूसरे अंकोंके लिखनेमें भी गलती हुई है.

पुस्तकोंमें अक्षरोंके साथ कभी कभी १ से ९ तक के लिये अंक, और खाली स्थानके लिये ० भी लिखते थे, और लेखोंकी नांई संख्यासूचक अक्षर और चिन्होंको एक पंक्तिमें नहीं, परन्तु बहुधा एक दूसरेके नीचे लिखते थे, जैसे कि:-

१५ = ऌ र्तृ, २१ = थ स्व, २२ = थ स्ति, २३ = थ श्री, २७ = थ ग्रा,

३३ = ला ३, ३९ = ला ॐ, ४७ = प्त ग्रा, ५५ = ६ तृ, ६६ = घु फु, ७८ = घू र्हा,

८६ = ७ फु, ९५ = ८ ॐ, १०० = सु ० ०, १०२ = सु ० २, १२७ = सु प्व ग्रा, १३१ = सु ला १,

१४५ = सु प्त ॐ, १५० = सु ६ ०, १९६ = सु ८३ ६, १९८ = सु ८३ र्हा, २०९ = सू ० ॐ, ३१३ = स्ता प्ता ३,

३१४ = सू ऌ ष्क, ४६३ = स्तो र्पु ३, ४७६ = स्तो र्पू फु, आदि.

लेख और दानपत्रोंमें विक्रम संवत्की छठी शताब्दी तक तो प्राचीन क्रम बराबर चलता रहा, परन्तु उस समयके पहिलेहीसे ज्योतिषके पुस्तकोंमें नवीन क्रमका प्रचार होगया था, जिसकी अत्यन्त सरलताके कारण सातवीं शताब्दीसे लेख आदिमें भी उस क्रमका प्रवेश होने लगा. [चेदि] संवत् ३४६ (विक्रम संवत् ६५३) का गुर्जर राजा दद्द तीसरेका दानपत्र, जो प्रसिद्ध प्राचीन शोधक हरिलाल हर्षदराय ध्रुवने प्रसिद्ध किया है (१), उसमें पहिले पहिल प्राचीन अंकोंके स्थान पलटे हुए पाये गये हैं, अर्थात् एकाईके अंक ३ को ३०० के स्थानपर, और ४ को ४० के स्थानपर रक्खा है. इस तरह ७ वीं शताब्दीसे नवीन क्रमका प्रवेश होकर ९ वीं शताब्दीके समाप्त होते होते प्राचीन क्रम बिल्कुल लुप्त होगया, और सर्वत्र नवीन क्रमसे अंक लिखे जाने लगे. यद्यपि बौद्ध और जैन पुस्तकोंमें

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका (जिल्द २, पृष्ठ १९-२०).

१२ वीं या १३ वीं शताब्दी तक प्राचीन क्रमसे अक्षर लिखनेका प्रचार रहा, तथापि उन्हीं पुस्तकोंसे पाया जाता है, कि उस समय केवल "मक्षिका स्थाने मक्षिका" की नांई प्राचीन पुस्तकोंके अनुसार नक़ल करते थे, परन्तु प्राचीन क्रमको सर्वथा भूले हुए थे.

ज्योतिषके ग्रन्थोंकी पद्य रचनामें बहुतसे अंक एकत्र लानेमें कठिनता रहती है, जिसको दूर करनेके निमित्त ज्योतिषियोंने कितनेएक अंकोंके लिये निम्नलिखित सांकेतिक शब्द नियत किये:-

० = ख, गगन, आकाश, अंबर, अभ्र, वियत्, व्योम, अंतरिक्ष, नभ, शून्य, पूर्ण, रंध्र आदि.

१ = आदि, शशी, इन्दु, विधु, चन्द्र, शीतांशु, सोम, शशाङ्क, सुधांशु, अब्ज, भू, भूमि, क्षिति, धरा, उर्वरा, गो, वसुंधरा, पृथ्वी, क्ष्मा, धरणी, वसुधा, कु, इला आदि.

२ = यम, यमल, अश्विन, नासत्य, दस्र, लोचन, नेत्र, अक्षि, दृष्टि, चक्षु, नयन, ईक्षण, पक्ष, बाहु, कर, कर्ण, कुच, ओष्ठ, गुल्फ, जानु, जंघ, द्वय, द्वंद्व, युगल, युग्म, अयन आदि.

३ = राम, गुण, लोक, भुवन, काल, अग्नि, वन्हि, पावक, वैश्वानर, दहन, तपन, हुताशन, ज्वलन, शिखी, कृशानु आदि.

४ = वेद, श्रुति, समुद्र, सागर, अब्धि, जलनिधि, अंबुधि, केंद्र, वर्ण, आश्रम, युग, तूर्य, कृत आदि.

५ = बाण, शर, सायक, इषु, भूत, पर्व, प्राण, पांडव, अर्थ, महाभूत, तत्व, इन्द्रिय आदि.

६ = रस, अंग, ऋतु, दर्शन, राग, अरि, शास्त्र, तर्क, कारक आदि.

७ = नग, अग, भूभृत्, पर्वत, शैल, अद्रि, गिरि, ऋषि, मुनि, वार, स्वर, धातु, अश्व, तुरग, वाजि आदि.

८ = वसु, अहि, गज, नाग, दंति, दिग्गज, हस्ती, मातंग, कुंजर, द्विप, सर्प, तक्ष, सिद्धि आदि.

९ = नन्द, अंक, निधि, ग्रह, रन्ध्र, द्वार, गो आदि.

१० = अंगुलि, दिशा, आशा, दिक्, पंक्ति, ककुप् आदि.

११ = रुद्र, ईश्वर, हर, ईश, भव, भर्ग, शूली, महादेव, आदि.

१२ = अर्क, रवि, सूर्य, मार्तंड, द्युमणि, भानु, दिवाकर, मास, राशि, आदि.

१३ = विश्वेदेवा. १४ = मनु, विद्या, इन्द्र, शक्र, लोक, आदि.

१५ = तिथि, घस्र, दिन आदि. १६ = नृप, भूप, भूपति, अष्टि आदि. १७ = अत्यष्टि. १८ = धृति. १९ = अतिधृति.

२० = नख, कृति. २१ = उत्कृति, प्रकृति. २२ = कृती.

२३ = विकृति. २४ = जिन, अर्हत्, सिद्ध आदि. २५ = तत्व

२७ = नक्षत्र, उडु, भ आदि. ३२ = दंत, रद आदि.

३३ = देव, अमर, त्रिदश, सुर आदि. ४९ = तान.

इन शब्दोंसे संख्या लिखनेका क्रम ऐसा है, कि पहिले शब्दसे एकाई, दूसरेसे दहाई, तीसरेसे सैंकड़ा, चौथेसे हजार आदि (अंकानां वामतो गतिः), जैसे कि संवत् २९३ के लिये " अब्दे...... वह्निग्रहद्वयङ्किते "
३ ९ २
लिखा है. (देखो पृष्ठ ४२, नोट ३).

इस प्रकार शब्दोंसे संख्या लिखनेका प्रचार पहिले पहिल ज्योतिषके पुस्तकोंमें हुआ. ग्रन्थकर्ता अपने ग्रन्थकी रचनाका समय, और लेख आदि के संवत् भी कभी कभी इसी शैलीसे लिखते थे, परन्तु सामान्य व्यवहारमें यह रीति प्रचलित नहीं थी.

प्रत्येक अंकके लिये एक एक शब्द लिखनेसे शब्दोंकी संख्या बढ़जानेके कारण प्रत्येक अंकके लिये एक एक अक्षर नियतकर एक शब्दसे दो, तीन या अधिक अंक प्रकट होसके ऐसा 'कटपयादि' नामका एक क्रम भी बनाया गया, जिसमें ९ तक अंक और शून्य के लिये निम्नलिखित अक्षर नियत हैं:-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म					
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ	

इस क्रममें भी उपरोक्त शब्द क्रमकी नांई पहिले अक्षरसे एकाई, दूसरेसे दहाई, तीसरेसे सैंकड़ा आदि प्रकट होता है. व्यंजनके साथ जुडा हुआ

स्वर, और संयुक्ताक्षरमेंसे जिसका उच्चारण पहिले होता हो, वह निरर्थक समझा जाता है.

तिरुकुरंगुडिके विष्णु मन्दिरके घंटपरके लेखमें कोलंब संवत् ६४४ के लिये "भवंति" शब्द लिखा है (१), जिसमें भ=४, व=४ और ति=६, मिलकर ६४४ निकलते हैं. ऐसेही कन्याकुमारीसे १० मीलपर सुचिन्द्रके शिव मन्दिरके लेखमें शक संवत् १३१२ के लिये "राकालोके" लिखा है (२).

आर्यभट्टने अपने पुस्तक आर्यसिद्धान्तमें "कटपयादि" क्रमसे अंक दिये हैं, परन्तु पहिले अक्षरसे एकाई, दूसरेसे दहाई आदि क्रम नहीं रक्खा, किन्तु जैसे वर्तमान समयमें अंक लिखेजाते हैं, उसी क्रमसे अंकोंके लिये अक्षर लिखे हैं (३), और संयुक्त व्यंजन भी दो दो अंकोंके लिये दिये हैं (४).

गांधार लिपिके अंक— गांधार लिपि फ़ारसीके समान दाहिनी ओरसे बाईं ओरको लिखी जाती है, परन्तु इसके अंक फ़ारसी अंकोंसे उलटे अर्थात् दाहिनी ओरसे बाईं ओरको लिखेजाते हैं, जिसका कारण यह है, कि फ़ारसी अंकोंकी नाईं ये अंक भारतवर्षके अंकोंसे नहीं, किन्तु फिनीशियन अंकोंसे बने हैं. प्राचीन फिनीशियन अंकोंका क्रम ऐसा था, कि १ से ९ तकके लिये क्रम पूर्वक १ से ९ खडी लकीरें, तथा १०, २० और १०० इनमेंसे प्रत्येकके लिये एक एक चिन्ह नियत था, परन्तु पीछेसे १ और ९ के बीचके अंकोंमें कुछ परिवर्तन होकर अधिक लकीरें लिखनेकी तकलीफ़ कम करदीगई थी, जैसे कि पल्माइरावालोंने पांचकी पांच खडी लकीरें मिटाकर उनके स्थानपर एक नया चिन्ह नियत किया

---

(१) श्रीमत्कोलंबवर्षे भवति गुणमणिश्रेणिरादित्यवर्मा वञ्चीपालो विशाख: प्रभुरखिलकलावल्लभ: पर्यबध्नात्० (इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द २, पृष्ठ ३६०).

(२) राकालोके शकाब्दे सुरपतिसचिवे सिंहयाते तुलायामारूढे पद्मिनीशे व्यदितिदिनयुते भानुवारे च शंभो: । काञ्चन् मार्तण्डवर्मा श्रियमतिविपुलां कीर्तिमायुश्च दीर्घं स्थाने मानी शुचीन्द्रे समकुरुत सभां केरलक्ष्मापतीन्द्र: (इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द २, पृष्ठ ३६१).

(३) सप्तर्षीणां कणधभभृभिला १५९९९९८ मुदयशिनधा ५८१७०९ यनाख्यस्य । श्रेराधिकेन साध्यं द्युगणाद्यखिलं तु कल्पगतात् (आर्यसिद्धान्त अधिकार २, आर्या ९).

(४) क्षकयोः १०१५ सरधे ७२९ विंभजेद्द्युगणं० (आर्यसिद्धान्त अधिकार १, आर्या ४०) ताने ६० लिप्ता: शोध्या योज्यास्तात्कालिका: क्रमात्स्युस्ते । स्फुटभुक्तौक्य ११ क्ष १० घ्ने खेनै: २० रभिसे २४७ ह्रंते विंवे (अधिकार ५,१५).

था, ऐसेही सीरियावालोंने दो और पांचके लिये एक एक नया चिन्ह मान लिया था (१).

शहबाज़गिरिपरकी अशोककी पहिली धर्माज्ञामें १ के लिये एक (।) और २ के वास्ते दो (।।) खडी लकीरें खुदी हैं. ऐसेही १३ वीं आज्ञामें ४ के लिये चार (।।।।), और तीसरीमें पांचके वास्ते पांच (।।।।।) खडी लकीरें दी हैं, जिससे पाया जाता है, कि १ से ९ तक गांधार अंकोंका क्रम अशोकके समयमें फ़िनीशियन क्रम जैसाही था. तुरुष्क राजाओंके समयमें केवल १, २ और ३ के लिये क्रमसे ।, ।। और ।।। खडी लकीरें लिखते थे, और ४ के लिये ।।।। लिखना छूटकर X चिन्ह लिखा जाता था (२).

तुरुष्क राजाओंके समयमें और उसके बाद गांधार लिपिमें १, २, ३, ४, १०, २० और १०० के लिये एक एक चिन्ह था (देखो लिपिपत्र ४३ वां). इनसे ९९९ तक अंक लिखे जासक्ते होंगे. १००० या उसके आगेके अंकोंके चिन्ह अबतक किसी लेख आदिसे ज्ञात नहीं हुए. ५ से ९ तक अंकोंके लिखनेका क्रम ऐसा था, कि ५ के लिये ४ का चिन्ह (X) लिख उसकी बाईं ओर एकका चिन्ह रखते थे (।X). इसी प्रकार ६ के लिये ४ और २ (।।X); ७ के लिये ४ और ३ (।।।X); ८ के लिये ४ और ४ (XX); और ९ के लिये ४, ४, और १ (।XX) लिखते थे.

ऐसेही ११ के लिये १० और १; २६ के लिये २०, ४ और २; २८ के वास्ते २०, ४ और ४; ३८ के लिये २०, १०, ४ और ४; ६१ के वास्ते २०, २०, २० और १; तथा ७४ के लिये २०, २०, २०, १० और ४ लिखते थे (देखो लिपिपत्र ४३ वां).

१०० के लिये एक, और २०० के लिये दो खडी लकीरें लिख उनकी बाईं ओर १०० का चिन्ह लिखते थे. ऐसेही ३०० आदिके लिये भी होना चाहिये. १२२ के लिये १००, २० व २; तथा २७४ के वास्ते २००, २०, २०, २०, १० और ४ लिखते थे (देखो लिपिपत्र ४३).

---

(१) एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका-नवींबार छपा हुआ (जिल्द १७, पृष्ठ ६२५).

(२) खालसीकी तेरहवीं धर्माज्ञामें ४ के लिये × चिन्ह लिखा है (कार्पस इन्स्क्रिपशनम् इण्डिकेरम्, जिल्द १, प्लेट ४, पङ्क्ति ५), जो पाली लिपिका ४ का अंक नहीं, किन्तु गांधार लिपिका है. पाली लिपिके लेखमें, गांधार लिपिका अंक भूलसे लिखा होगा, परन्तु इससे पाया जाता है, कि अशोकके समय तक ४ के लिये चार खड़ी लकीरें, और × चिन्ह दोनों लिखनेका प्रचार था, किन्तु तुरुष्क राजाओंके समय लकीरोंका लिखना बिल्कुल छूटगया था.

लिपिपत्रोंका संक्षिप्त वृत्तान्त.

लिपिपत्र पहिला.

यह लिपिपत्र गिरनार पर्वतपर खुदे हुए मौर्यवंशी राजा अशोकके लेखकी छाप(१) से तय्यार किया है. भारतवर्षमें अशोकसे पहिलेका कोई लेख अबतक नहीं मिला, इसलिये अशोकके लेखोंकी लिपिको उपलब्ध लिपियोंमें सबसे प्राचीन कहना चाहिये (इस लिपिके समयके लिये देखो प्रष्ठ २). अशोकके समस्त पाली लेखोंकी लिपि क़रीब क़रीब इस लिपिसी है, जिसका कारण यह है, कि ये सब लेख अशोककी राजकीय लिपिमें लिखे गये हैं, क्योंकि इसी समयके पास पासके भट्टिप्रोलुके स्तूपसे मिले हुए लेखों (२), और नाना घाट आदिके लेखोंकी लिपि और इस लिपिमें बहुत कुछ अन्तर है.

इसलिपिमें 'आ' का चिन्ह एक छोटीसी आडी लकीर-है, जो व्यंजनकी दाहिनी ओरको लगाई जाती है (देखो खा, जा, मा, रा, आदि). 'इ' का चिन्ह _| समकोणसा है (कभी कभी समकोणके स्थानपर गोलाई भी करदेते हैं), जो व्यंजनके सिरपर दाहिनी ओर को लगता है (देखो खि, टि, मि, नि आदि). 'ई' का चिन्ह _|| है, जो 'इ' के चिन्हके समान लगता है (देखो पी, मी). 'उ' और 'ऊ' के चिन्ह क्रमसे एक – और दो = आडी या खडी लकीरें हैं, जो व्यंजनके नीचेको लगाई जाती हैं. जिन व्यंजनोंका नीचेका हिस्सा गोल या आडी लकीर वाला होता है, उनके साथ खडी, और जिनका खडी लकीरवाला होता है, उनके साथ आडी लगाई जाती हैं (देखो तु, नु, कू, जू,). 'ए' और 'ऐ' के चिन्ह क्रमसे एक – और दो = आडी लकीरें हैं, जो व्यंजनकी बाई ओर ऊपरकी तरफ़ लगाई जाती हैं (देखो दे, थै). 'ओ' का चिन्ह दो आडी लकीरें – – हैं, जिनमेंसे एक व्यंजनकी दाहिनी ओरको, और दूसरी बाई ओरके सिरपर या बीचमें कभी कभी समान रेखामें, और कभी कभी ऊंचे नीचे भी लगाई जाती हैं (देखो गो, मो, नो). 'औ' का चिन्ह इस लेखमें नहीं है, किन्तु उसमें 'ओ' के चिन्हसे इतनी विशेषता है, कि बाईं ओरको दो =.

---

(१) डाक्टर बर्जेसकी छाप–आर्कियालाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डियाकी रिपोर्ट आन एण्टिक्विटीज़ आफ़ काठियावाड़ एण्ड कच्छ (प्लेट १०–१४).

(२) एपिग्राफिया इण्डिका (जिल्द २, पृष्ठ ३२३–२९).

आडी लकीरें होती हैं, जैसे कि लिपिपत्र दूसरेके 'पौ' में हैं. अनुस्वारका चिन्ह एक बिन्दु है, जो अक्षरकी दाहिनी ओरको या ऊपर रक्खा जाता है. संयुक्त व्यंजनोंमें बहुधा पहिले उच्चारण होनेवाला ऊपर, और दूसरा उसके नीचे जोडा जाता है (देखो म्हि, स्ति), परन्तु इस लेखमें पहिले उच्चारण होनेवाले 'व' को बहुधा दूसरेके नीचे लिखा है (देखो व्य), जो लेखककी गलतीसे होगा. पीछे उच्चारण होनेवाले 'ट' और 'र' को पहिले लिखे हैं (देखो त्रा, प्रि, स्टि, स्टा), और 'र' के लिये c चिन्ह रक्खा है, जो केवल इसी लेखमें पाया जाता है. 'क्र' और 'व्र' में 'र' का चिन्ह अलग नहीं लगा, किन्तु 'क' और 'ब' की आकृतिमें ही कुछ फर्क कर दिखा दिया है (देखो क्र, व्रा). इस लेखकी भाषा प्राकृत होनेके कारण इसमें 'ऊ', 'श' और 'ष' नहीं है, परन्तु खालसीके लेखमें 'श' (/|\ ) पाया जाता है

लेखकी असली पंक्तियोंका अक्षरान्तर.

इयं धंमलिपी देवानं प्रियेन प्रियदसिना राञा लेखापिता इध न किंचि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं न च समाजो कतव्यो वहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानं प्रियो प्रियदसि राजा अस्ति पितुए कचा समाजा साधुमता देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो पुरा महानसम्हि देवानं प्रियसा प्रियदसिनो राञो अनु दिवसं बहूनि प्राणि सतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय से अज यदा अयं धंम लिपी लिखिता ती एव प्राणा आरभदे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो सोपि मगो न धुवो एतेपि त्री प्राणा पछा न आरभिसंदे(१).

लिपिपत्र दूसरा.

यह लिपिपत्र क्षत्रपराजा रुद्रदामाके गिरनार पर्वतपरके लेखकी

---

(१) इयं धर्मलिपी देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता इह न कश्चित् जीवं आलभ्य प्रहोतव्यं न च समाज: कर्त्तव्यो बहुकं हि दोषं समाजे पश्यति देवानां प्रिय: प्रियदर्शी राजा अस्ति पित्रा कृता: समाजा: साधुमता देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञः पुरा महानसे देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञो ऽनुदिवसं बहूनि प्राणिशतसहस्राण्यालभिषत सूपार्थाय मद्य यदेयं धर्मलिपी लिखिता त्रय एव प्राणाआलभ्यन्ते सूपार्थाय द्वौमयूरावेको मृग: सो पि मृगो न ध्रुव एतेपि त्रय: प्राणा: पश्चान्नालप्स्यन्ते.

छापसे (१) तय्यार किया है. उक्त लेखसे पायाजाता है, कि रुद्रदामाके समय [शक] संवत् ७२ मृगशिर कृष्णा १ को महावृष्टिसे सुदर्शन तालाव-का बन्द टूट गया, जिसको पीछा बनवाकर रुद्रदामाने यह लेख खुद-वाया था. रुद्रदामाका देहान्त शक संवत् ९० के आस पास हुआ था, जिससे इस लेखका समय शक संवत्की पहिली शताब्दी ठहरता है. इसमें अ, क, ख, ग, घ, च, ड, त, द, ब, भ, म, य, र, ल, व और ह आदिमें, तथा व्यंजनके साथ जुडे हुए स्वरोंके चिन्होंमें कितनाक परिवर्तन हुआ है, जिसका कारण कुछ तो समयका अंतर, और कुछ भिन्न भिन्न वंशके राजाओंके यहांकी लेखन शैलीकी भिन्नता है. इस समय अक्षरों-के सिर बांधने लग गये थे, परन्तु सिरमें लंबाई नहीं थी. विसर्गके दो बिन्दु अक्षरके आगे लगाये हैं, और हलंत व्यंजन पंक्तिसे कुछ नीचे लिखा है. 'नौ' और 'मौ' में 'औ' का चिन्ह भिन्न ही प्रकारका है.

लेखकी असली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

परमलक्षणव्यंजनैरुपेतकान्तमूर्त्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसह-स्राय गोब्राह्म..................र्थं धर्म्मकीर्त्तिवृद्ध्यर्थं च अपीडयित्वा करविष्टिप्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात्कोशा[त्]महता धनौघेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुणदृढतरविस्तारायामं सेतुं विधाय सर्व्वतटे ....सुदर्शनतरं कारितमिति अस्मिन्नर्थे महाक्षत्रपस्य मतिस-चिवकर्म्मसचिवैरमात्यगुणसमुद्युक्तैरप्यतिमहत्वाद्भेदस्य(स्या)नुत्साहविमुख-मतिभिः

लिपिपत्र तीसरा.

यह लिपिपत्र इलाहाबादके किलेके भीतरके स्तंभपर अशोकके लेखके पास खुदे हुए गुप्तवंशके राजा समुद्रगुप्तके लेखकी छापसे (२) तय्यार किया है. उक्त लेख समुद्रगुप्तके मृत्युके बाद उसके पुत्र चन्द्रगुप्त दूसरेके समयमें खुदा था.

चन्द्रगुप्त दूसरेका राज्य गुप्त संवत् ९५ तक रहा था, जिससे यह

(१) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया-रिपोर्ट आन एन्टिक्विटीज़ आफ काठि-यावाड एण्ड कच्छ (प्लेट १४).

(२) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, प्लेट १).

लेख गुप्त संवत्की पहिली शताब्दीका है. इस पत्रकी लिपि लिपिपत्र पहिलेसे अधिक मिलती है. इ, उ, ण, न, म, स और ह में अधिक परिवर्तन पायाजाता है. व्यंजनोंके साथ जुडे हुए स्वरोंके चिन्ह कुछ कुछ वर्तमान चिन्होंसे हैं, और 'औ' का चिन्ह त्रिशूलसा है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर.

महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराजश्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तपुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्फ(त्प)न्नस्य महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य सर्व्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलाकीर्त्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः यस्य। प्रदानभुजविक्र-

लिपिपत्र चौथा.

यह लिपिपत्र कुमारगुप्तके समयके मालव संवत् ४९३ और ५२९ के मन्दसोरके लेखकी छापसे तय्यार किया है (१). इसमें 'इ', 'ध', 'व' आदि कितनेएक अक्षरोंमें पहिलेसे कुछ फ़र्क़ है. 'इ' 'ई' और 'ए' के चिन्ह, और 'ल' के साथ 'ओ' का चिन्ह पहिलेसे भिन्न प्रकारका है. उपध्मानीयका चिन्ह ⊞, और जिह्वामूलीयका इसी लिपिके 'म' अक्षरसा है. अक्षरोंके सिरोंकी लंबाई कुछ कुछ बढ़ी हुई है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर.

वत्सरशतेषु पंचसु विंशं(विंश)त्यधिकेषु नवसु चाब्देषु । याते ष्वभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायां ॥ स्पष्टैरशोकतरुकेतकासिंदुवारलोलातिमुक्तकलतामदयंतिकानां । पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नूनमैक्यं विजृंभितशरे हरपूतदेहे ॥ मधुपानमुदितमधुकरकुलोपगीतनगनैकपृथुशाखे । काले नवकुसुमोद्गमदंतुरकांतप्रचुररोध्रे ।

लिपिपत्र पांचवां.

यह लिपिपत्र मंदसोरसे मिले हुए राजा यशोधर्म (विष्णुवर्द्धन) के

(१) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम् (जिल्द ३, प्लेट ११).

समयके मालव (विक्रम) संवत् ५८९ के लेखकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसमें अ, आ, औ, ण, भ और स की आकृतिमें विशेष फ़र्क़ है. स्वरोंके चिन्ह वर्तमान स्वरचिन्होंसे मिलते जुलते हैं. हलंत व्यंजन पंक्तिसे कुछ नीचे लिखा है, और उसका सिर उससे अलग रक्खा है (देखो न् म्). इस लिपिका 'ओ' लिपिपत्र १६ के 'ओ' जैसा होना चाहिये.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

षष्ट्या सहस्रैः सगरात्मजानां खातः खतुल्यां रुचमादधानः अस्यो-दपानाधिपतेश्चिराय यशान्सिपायात्पयसां विधाता ॥ अथ जयति जनेन्द्रः श्री शोधर्म्मनामा प्रमदवनमिवान्तः शत्व(त्रु)सैन्यं विगाह्य व्रणकिस-लयभङ्गैर्य्योङ्गभूषां विधत्ते तरुणतरुलतावद्वीरकीर्त्तिर्व्विनाम्य ॥

लिपिपत्र छठा.

यह लिपिपत्र वाकाटक राजा प्रवरसेन दूसरेके दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसमें संवत् नहीं दिया, किन्तु अक्षरोंके ढंगसे पांचवीं या छठी शताब्दीकी लिपि प्रतीत होती है (३). इसमें हरएक अक्षरका सिर चतुरस्र ▫ बनाया है. इसके अक्षर और स्वरोंके चिन्ह लिपिपत्र चौथेके अक्षर व चिन्होंसे अधिक मिलते हैं.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

दृष्टम् सिद्धम् ॥ अग्निष्टोमाप्तोर्य्यामोक्थ्यषोडश्यातिरात्रवाजये (पे)यबृहस्पतिसवसाद्यस्कचतुरश्वमेधयाजिनः विष्णुवृद्धसगोत्रस्य सम्राट् (म्राड्)वाकाटकानाम्महाराजश्रीप्रवरसेनस्य सूनोः सूनोः अत्यन्तस्वा-मिमहाभैरवभक्तस्य अन्सभारसन्निव(वे)शितशिवलिंगोद्वहनशिवसुपरितु-ष्टसमुत्पादितराजवन्शानाम् पराक्रमाधिगतभागीरथ्या[थ्य]मलजलमूर्द्धा-भिषिक्तानाम् दशाश्वमेधावभृथस्नातानाम्भारशिवानाम्महा-

---

(१) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, प्लेट २२).

(२) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम् (जिल्द ३, प्लेट ३५).

(३) इस दानपत्रमें प्रवरसेन दूसरेकी माता प्रभावतीगुप्ताको देवगुप्तकी पुत्री लिखा है. यदि देवबर्नारकके लेखमें आदित्यसेनदेवके बाद देवगुप्तका नाम ठीक ठीक पढ़ाजाता हो, और वही प्रभावतीगुप्ताका पिताहो, तो इस दानपत्रका समय विक्रम संवत्की आठवीं शताब्दी

लिपिपत्र सातवां.

यह लिपिपत्र वाकाटक राजा प्रवरसेनके ही दूसरे दानपत्रकी छाप से (१) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र छठेकी लिपिसे मिलती जुलती है, परन्तु अक्षरोंके सिर और लिखनेकी शैलीमें उससे फ़र्क़ है. इसमें 'इ' और 'ई' के चिन्होंका भेद ठीक ठीक नहीं बतलाया.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

वाकाटकानाम्परममाहेश्वरमहाराजश्रीप्रवरसेनस्यवचना[त्]भोजकटराज्ये मधुनदीतटे चर्म्माङ्क नामग्राम : राजमानिकभूमिसहस्रैरष्टाभिः ८००० शत्र(त्रु)घ्नराजपुत्रकोण्डराजविज्ञा(ज्ञ)प्त्या नानागोत्रचरणेभ्यो ब्राह्मणेभ्य : सहस्राय दत्त : यतोस्मत्सन्तका[:]सर्व्वाध्यक्षाधियोगनियुक्ता आज्ञासञ्च(ञ्चा)रिकुलपुत्राधिकृता भटाच्छा(श्छा)त्राश्र विश्रुतपूर्व्वयाज्ञयाज्ञपयितव्या विदित—

लिपिपत्र आठवां.

यह लिपिपत्र गुर्जर (गूजर) वंशके राजा दद्द दूसरेके शक संवत् ४०० के दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसमें अ, आ, ए, ख, ङ, ज, थ, व, ल और श अक्षरोंमें पहिलेसे कुछ फ़र्क़ है, और हलंतका चिन्ह एक आडी लकीर है, जो व्यंजनके नीचे लगाई गई है (३).

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

ॐ स्वस्ति विजयविक्षेपात् भरुकच्छप्रद्वारवासक(का)त् सकलघनपटलाविनिर्गतरजनिकरकरावबोधितकुमुदधवलयश[:]प्रतापस्थगितनभोमंडलोनेकसमरसंकटप्रमुख- गतनिहतशत्रुस(सा)मंतकुला(ल)वधु(धू)प्रभातश(स)मयरुदितफलोद्गीयमानाविमलनिस्त्रं(स्त्रिं)शप्रतापो देवद्विजातिगुरु-

---

होना चाहिये. उक्त लेखकी, जो छाप फ्लीट साहिबने कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्की जिल्द ३ रीकी प्लेट २८ में दी है, उसमें तो देवगुप्तका नाम बिल्कुल नहीं पढ़ाजाता.

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १२, पत्र २४२-४५ के बीचकी प्लेटें).

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ७ पृष्ठ ६२-६३ के बीचकी प्लेट).

(३) इस दानपत्रकी लिपि इस लिपिपत्रके लिखेअनुसार है, परन्तु इसके अन्तमें राजाने अपने हस्ताक्षरोंसे " स्वहस्तोयं मम श्रीवि(वी)तरागसु(सु)नो[:] श्रीप्रसं(शां)तरागस्य " लिखा है, जिसकी लिपि वर्तमान देवनागरीसे बहुतही मिलती जुलती है. इससे पाया जाता है,

चरणकमलप्रण(णा)मोद्घृष्टवज्रा(ज्र)मणिकोटिरुचिरादि(रदी)धितिविराजितम(मु)कुटोद्भासितशिरा: दि(दी)नानाथातुर(रा)भ्यागतार्थिजनक्लि(क्लि)ष्टपरि—

लिपिपत्र नवां.

यह लिपिपत्र नेपालके राजा अंशुवर्माके [श्रीहर्ष] संवत् ३९ (विक्रम संवत् ७०२) के लेखकी छापसे (१) तय्यार किया है. अ, आ, इ, ए और ख अक्षर, जो उक्त लेखमें नहीं मिले, वे उससे कुछ पिछले समयके नेपालके ही लेखोंसे लिये हैं.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

ॐ स्वस्ति कैलासकूटभवनादनिशि निशि चानेकशास्त्रार्थविमर्शावसादितासद्दर्शनतया धर्माधिकारस्थितिकारणमेवोत्सवमनतिशयम्मन्यमानो भगवत्पशुपतिभट्टारकपादानुगृहीतो बप्पपादानुध्यात: श्र्यंशुवर्मा कुशली पश्चिमाधिकरणवृत्तिभुजो वर्तमानान्भविष्यतश्च यथार्हङ्कुशलमाभाष्य समाज्ञापयति विदितम्भवतु भवताम्पशु—

लिपिपत्र दसवां.

यह लिपिपत्र वल्लभीके राजा धरसेन दूसरेके [वल्लभी]संवत् २५२

कि उस समयमें भी दो प्रकार की लिपियें प्रचलित थीं; एक तो पुस्तक, लेख, दानपत्र आदिमें बहुत स्पष्ट लिखी जाने वाली प्राचीन अक्षरोंकी, और दूसरी चीठ्ठियां आदि व्यवहारिक कार्योंमें त्वरासे लिखी-जाने वाली, प्राचीनसे निकली हुई, वर्तमान देवनागरीसे मिलती जुलती. इसी दानपत्रसे दो लिपियोंका होना प्रतीत होता है ऐसाह नहीं, किन्तु मथुरासे मिले हुए तुरुष्क राजाओंके समयकी शक संवत्की पहिली शताब्दीके लेखोंमें भी 'य' दो प्रकारसे लिखा है, जहां अकेला आया है, वहां तो अशोकके समयके 'य' से मिलता जुलता है, परन्तु संयुक्ताक्षरोंमें जहां कहीं आया है, वहां वर्तमान देवनागरीके 'य' साही है. ऐसे ही गुप्त राजाओंके, और अन्य अन्य लेखोंमें भी संयुक्ताक्षरोंमें जहां कहीं 'य' आया है, वहां देवनागरीका ही है. राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा गोविन्द (प्रभूतवर्ष) के शक संवत् ७३० (विक्रम संवत् ८६५) के दानपत्रकी लिपि स्पष्ट देवनागरीही है, और उससे केवल ४२ वर्ष पहिलेके वल्लभीके राजा शिलादित्य छठेके [वल्लभी] संवत् ४४७ (विक्रम संवत् ८२३) के दानपत्रमें बिल्कुल प्राचीन लिपि है. इसलिये पालीसे बनी हुई त्वरासे लिखीजाने वाली नागरीसे मिलती हुई एक प्रकारकी लिपि शक संवत्के प्रारंभसे ही अवश्य प्रचलित थी.

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ९. पृष्ठ १७० के पासकी प्लेट.)

(विक्रम संवत् ६२८) के दानपत्रकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसमें ख, ङ, ञ, ड और ब की आकृतिमें कुछ फ़र्क़ है, और जिह्वामूलीयका चिन्ह 'म' जैसा है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

स्वस्ति वलभि(भी)त : प्रसभप्रणतामित्राणांमैत्रकाणामतुलबलस-(सं)पन्नमण्डलाभोगसंसक्तसंप्रहारशतलब्धप्रतापः प्रतापः प्रतापोपनतदा-नमानार्ज्जवोपार्ज्जितानुरागो(गा)नुरक्तमौलभृतमित्रश्रेणीबलावाप्तराज्यश्रि: (श्रीः) परममा(मा)हेश्वर : श्रि(श्री)सेनापतिभटार्कस्तस्य सुतस्तत्पादरजो-रुणावनतपवित्रि(त्री)कृतशिरा : शिरोवनतशत्रुचूडामणिप्रभाविच्छुरित-पादनखपंक्तिदि(दी)धितिर्हि(दी)नानाथकृपणजनोप—

लिपिपत्र ११ वां.

यह लिपिपत्र उदयपुरके विक्टोरिया हॉलके प्राचीन लेख संग्रहमें रक्खे हुए मेवाड़के गुहिल राजा अपराजितके समयके [विक्रम] संवत् ७१८ के लेखसे तय्यार किया है. इसमें आ, इ और ई, के चिन्ह कहीं कहीं भिन्न ही प्रकारसे लगाये हैं (देखो ना, ला, धि, री, ही).

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

राजाश्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधितिध्वस्तध्वान्तस-मूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत् । श्रीमानित्यपराजित : क्षितिभृताम-भ्यर्चितोभूर्धभि :(भि)र्वृत्तस्वच्छतयेव कौस्तुभमणिर्ज्जातो जगद्भूषणं ॥ शिवात्मजो खण्डितशक्तिसंपद्गुर्य : समाक्रान्तभुजङ्गशत्रु[:] । तेनेन्द्रव-त्स्कन्द इव प्रणेता । वृतो महाराजवराहसिंह : जनगृहीतमपिक्षयवर्जितं धवलमप्यनुरञ्जित—

लिपिपत्र १२ वां.

यह लिपिपत्र राजा दुर्गगणके समयके झालरापाटनके लेखकी छाप-से (२) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र ११ वें से अधिक

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द, ८, पृष्ठ ३०२ के पासकी प्लेट).

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ५, पृष्ठ १८०-८१ के बीचकी प्लेट).

मिलती है, और कितनेएक अक्षर देवनागरीके से हैं. इसमें जिह्वामूलीयका चिन्ह इसी लिपिके 'व' सा है, तथा 'व' और 'ब' में भेद नहीं है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

श्रीदुर्ग्गगणे नरेन्द्रमुख्ये सति संपादितलोकपालवृत्ते । अवदातगुणोपमानहेतौ सर्व्वाश्चर्यकलावि— श्रितीह ॥ यस्मिन्प्रजा : प्रमुदिता विगतोपसर्ग्गा : स्वै X कर्म्मभिर्व्विदधाति स्थितिमुर्व्वरेशे । सत्व(त्वा)ववो(बो)धविमलीकृतचेतसश्च विप्रा : पदं विविदिषन्ति परं स्मरारे : ॥ य : सर्व्वावनिपालविम्मयकर : सत्वप्रवृत्त्युज्व(ज्ज्व)लज्वालादग्धतमाक्षतारितिमि—

लिपिपत्र १३ वां.

यह लिपिपत्र कोटाके पाससे मिले हुए, राजा शिवगणके मालव संवत् ७९५ के लेखकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र ११ वें और १२ वें से मिलती हुई है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

ॐनम : शिवाय ॐनम :(म)स्सकलसंसारसागरोत्तारहेतवे । तमोगर्त्ताभिसंपातहस्तालम्बाय शम्भवे ॥ श्वेतद्वीपानुकारा X क्वचिदपरिमितैरिन्दुपादै : पतद्भिर्न्नित्यस्थैस्सान्धकार : क्वचिदपि निभृतै : फणिपैर्भोगभागैः सोष्माणो नेत्तभाभिः क्वचिदतिश(शि)शिरा जह्नुकन्याजलो(लौ)घैरित्थं भावैर्व्विरुद्धैरपि जनितमुद :

लिपिपत्र १४ वां.

यह लिपिपत्र गुजरातके राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा कर्कराजके शक संवत् ७३४ के दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र ७ वे से बहुत मिलती हुई है (३).

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १९, पृष्ठ ५६ के पासकी प्लेट).

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १२, पृष्ठ १५८-६१ के बीचकी प्लेटें).

(३) इस दानपत्रमें राजाके हस्ताक्षरकी लिपि दानपत्रकी लिपिसे भिन्न दक्षिणकी लिपि है, और अन्तमें ४ पंक्ति भिन्नही लिपिकी हैं, जिनमेंसे मुख्य मुख्य अक्षर क्रॉट [ ] के भीतर रक्खे हैं.

दानपत्रकी असली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ स वोऽव्याद्वेधसा येन (?) यन्नाभिकमलङ्कृतं । हरश्च यस्य कान्तेन्दुकलया समलङ्कृतं ॥ स्वस्ति स्वकीयान्वयवङ्शकर्त्ता श्रीराष्ट्रकूटामलवङ्शजन्मा । प्रदानशूरः समरैकवीरो गोविन्दराजः क्षितिपो बभूव ॥ यस्या—मात्रजयिनः प्रियसाहसस्य क्षमापालवेशफलमेव बभूव सैन्यं । मुक्त्वा च शङ्करमधीश्वरमीश्वराणां नावन्दतान्यममरे—

लिपिपत्र १५ वां (१).

यह लिपिपत्र राजीम (मध्य प्रदेशमें) से मिले हुए राजा तिवरदेवके दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसकी लिपि और अक्षरोंके सिरकी आकृति लिपिपत्र छठेसे मिलती है. इसमें 'इ' और 'ई' के चिन्होंका भेद स्पष्ट नहीं है.

दानपत्रकी असली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ जयति जगत्र(त्त्र)यतिलक[ः] क्षितिभृत्कुलभवनमङ्गलस्तत्र श्रि(श्री)मत्तिवरदेवो धौरेय[ः] सकलपुण्यकृता(तां) स्त(स्व)स्ति श्रि(श्री)पुरात्समधिगतपञ्चमहाशब्दानेकनतनृपतिकिरि(री)टकोटिघृष्टचरणनखदर्पणोद्भासितोपि कण्ठदुन्मुखप्रकटरिपुराजलक्ष्मि(क्ष्मी)केशपाशाकर्षणदुर्ल्ललितपाणिपल्ल[वो]निशितनिस्त्रि(स्त्रि)ङ्शघनघातपातितारिद्विरदकुम्भमण्डलगलद्व(द्ब)हलशोणितसदासिक्तमुक्ताफलप्रकरमण्डितरणाङ्गणाद्वि(वि)विधरत्नसंभारलाभलोभविजृम्भमाणारिक्षारवारिवाड—

लिपिपत्र १६ वां.

यह लिपिपत्र मारवाड़के पडिहार (प्रतिहार) राजा कक्कुअ (कक्कुक) के [विक्रम] संवत् ९१८ के लेखकी दो छापें, जो जोधपुरके प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसादजीने भेजी, उनसे तय्यार किया है. इसमें 'अ' और 'आ' विलक्षण हैं, तथा 'ई' और 'ओ' भी हैं.

---

(१) १४ वां लिपिपत्र छपजाने बाद यह लिपिपत्र तय्यार करना उचित समझा गया, जिससे इसको यहां रक्खा है, नहीं तो यह लिपिपत्र छठेके बाद रक्खा जाता.

(२) कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम् (जिल्द ३, प्लेट ४५).

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ सग्गापवग्गमग्गं पढमं सयलाण कारणं देवं । णीसेसदुरिअद-लणं परमगुरुं णमह जिणण(णा)हं ॥ रहुतिलओ पडिहारो आसी सिरिल-क्खणोत्ति रामस्स । तेण पडिहारवन्सो समुण्णई एत्थ सम्पत्तो ॥ विप्पो सिरिहरिअन्दो भज्जा आसित्ति खत्तिआ भद्दा । अणसु (१)—

लिपिपत्र १७ वां.

यह लिपिपत्र मोरबी (काठियावाड़में) से मिले हुए राजा जाइंक-देवके गुप्त संवत् ५८५ के दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसमें 'व' और 'ब' का कुछ भेद नहीं है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

षष्टिवरिष(वर्ष)सहस्राणि स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिदः । आछेत्ता [चा]-नुमंता च तान्येव नरकं वसेत् ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेतु(त्) वसुंधरां । गवां शतसहस्रस्य हंतुः प्राप्नोति किल्विषं ॥ विंध्याटवीष्वतोया[सु] शुष्ककोटरवासिनः । महाहयो—

लिपिपत्र १८ वां.

यह लिपिपत्र राजा विजयपालके समयके [विक्रम] संवत् १०१६ के अलवरके लेखकी दो छापोंसे तय्यार किया है, जिनमेंसे एक काव्यमाला संपादक पण्डित दुर्गाप्रसादजी (महामहोपाध्याय) ने वि० सं० १९४५ में भेजी थी, और दूसरी अलवरके पण्डित रामचन्द्रजीकी भेजी हुई फ़तह-लालजी महतासे मिली. इसकी लिपि देवनागरीसे बहुत कुछ मिलती हुई है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ स्वस्ति ॥ परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीक्षितिपालदे-वपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविजयपालदेवपादा-

---

(१) ॐ स्वर्गापवर्गमार्गं प्रथमं सकलानां कारणं देवं । निःशेषदुरितदलनं परमगुरुं नमत जिननाथं ॥ रघुतिलकः प्रतिहार आसीत् श्रीलक्ष्मण इति रामस्य । तेन प्रतिहारवंशः समु-न्नतिमत्र प्राप्तः । विप्रः श्रीहरिचन्द्रो भार्या आसीत् इति क्षत्रिया भद्रा ।

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द २, पृष्ठ २५८ के पासकी प्लेट).

नामभिप्रवर्द्धमानकल्याणविजयराज्ये सम्वत्सरशतेषु दशसु षोडशोत्तर-केषु माघमाससितपक्षत्त्रयोदश्यां शनियुक्तायामेवं सं १०१६ माघ-शुदि १३ श—

लिपिपत्र १९ वां.

यह लिपिपत्र हैहयवंशके राजा जाजल्लदेवके समयके [चेदि] संवत् ८६६ के लेखकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसमें 'इ' और 'ई' अक्षर पहिलेसे भिन्नही प्रकारके हैं. 'व' तथा 'ब' में भेद नहीं है, और बाकीके अक्षर देवनागरी जैसे हैं.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

तद्वंश्यो हैहय आसीद्यतो जायन्त हैहयाः। ....त्यसेन-प्रियासती ॥ ३ ॥ तेषां हैहयभूभुजां समभवद्वंसे(शे) स चेदीश्वरः श्रीको-कल्ल इति स्मरप्रतिकृतिर्विस्व(श्व)प्रमोदो यतः। येनायंत्रितसौ(शौ)र्य ....मेन मातुयशः स्वीयं प्रेषितमुच्चकैः कियदिति व्र(ब्र)ह्मांडमन्तः क्षिति ॥ ४ ॥ अष्टादशास्य रिपुकुंभिविभंगसिंहाः पु—

लिपिपत्र २० वां.

यह लिपिपत्र चौहाण राजा चाचिगदेवके समयके [विक्रम] संवत् १३१९ के लेखकी एक छापसे तय्यार किया है, जो मेरे मित्र जोधपुरनिवासी मुनशी देवीप्रसादजीने भेजी थी. इसकी लिपि जैनग्रन्थोंकी देवनागरी है, जो बहुधा यति लोग लिखा करते हैं.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

आशाराजक्षितिपतनयः श्रीमदाह्लादनाह्वो जज्ञेभूभृद्भुवनविदितश्चाहमानस्य वंशे। श्रीनड्डूलेशिवभवनकृद्धर्म्मसर्वस्ववेत्ता यत्साहाय्यं प्रतिपदमहो गूर्ज्जरेशश्च कांक्ष ॥ ३२ ॥ चंचत्केतकचंपकप्रविलसत्तालीत-मालागु(ग)रुस्फूर्ज्जच्चंदनना—

लिपिपत्र २१ वां.

यह लिपिपत्र बंगालके सेनवंशी राजा विजयसेनके समयके लेखकी

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका (जिल्द १, पृष्ठ ३४ के पासकी प्लेट).

छापसे (१) तय्यार किया है. इसमें कोई संवत् नहीं दिया, परन्तु लक्ष्मणसेन संवत् चलानेवाला लक्ष्मणसेन इसी विजयसेनका पौत्र था, जिससे उक्त लेखका समय विक्रम संवत्की १२ वीं शताब्दीका मध्य ठहरता है. इसमें 'ब' और 'व' का भेद नहीं है. इसी लिपिसे प्रचलित बंगला लिपि बनी है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

तस्मिन् सेनान्ववाये प्रतिसुभटशतोत्सादनब्र(ब्र)ह्मवादी स ब्र(ब्र)-ह्मक्षत्रियाणामजनि कुलशिरोदामसामन्तसेनः उद्गीयन्ते यदीयाः स्खलदुदधिजलोल्लोलशीतेषु सेतोः कच्छान्ते ष्वप्सरोभिर्दशरथतनयस्पर्द्धया युद्धगाथाः ॥ यस्मिन् सङ्गरचत्वरे पटुरटत्तूर्योपहूतद्विषद्वर्गे येन कृपाण—

लिपिपत्र २२ वां.

यह लिपिपत्र बंगालके राजा लक्ष्मणसेनके दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है, जिसमें उक्त राजाका संवत् ७ लिखा है. इसकी लिपि लिपिपत्र २१ से मिलती हुई है. इसमें भी 'ब' और 'व' का भेद नहीं है, और अक्षरोंके सिरकी आकृतिमें फ़र्क़ है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

स खलु श्रीविक्रमपुरसमावासित[ः] श्रीमज्जयस्कन्धावारात् महाराज(जा)धिराजश्रीव(ब)ल्लालसेनदेवपादानुध्यातपरमेश्वरपरमवैष्णवपरमभट्टारकमहाराज(जा)धिराजश्रीमल(ल्ल)क्ष्मणसेनदेवः कुशली । समुपगताशेषराजराजन्यकराज्ञीराणकराजपुत्रराजामात्य—

लिपिपत्र २३ वां.

यह लिपिपत्र चितागाँगसे मिले हुए राजा दामोदरके समयके शक सं० ११६५ के दानपत्रकी छापसे (३) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र २१ वें से मिलती जुलती है. इसमें 'ब' और 'व' का भेद नहीं है.

---

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका (जिल्द १, पृष्ठ ३०८ के पासकी प्लेट).

(२) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ४४, हिस्सा १, पृष्ठ ३ के पासकी प्लेट).

(३) एशियाटिक सोसाइटी बंगालका जर्नल (जिल्द ४३, हिस्सा १, पृष्ठ ३१८ के पासकी प्लेट).

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ शुभमस्तु शकाब्दा : ११६५ ॥ देवि प्रातरवेहि नन्दनवनान्मन्दः कदम्बानिलो वाति व्यस्तकरः शशीति कृतकेनालाप्य कौतुहली। तत्कालस्खलदङ्गभङ्गिमचलामालिङ्ग्य लक्ष्मीं बलादालोलानवविम्व (बिम्ब)चुम्व(म्ब)नपर : प्रीणातु दामोदर : ॥ अम्भोजश्रीहरणपिशुन : प्रेमभू : कैरवाणां—

लिपिपत्र २४ वां.

यह लिपिपत्र उड़ीसाके राजा पुरुषोत्तमदेवके दानपत्रकी छापसे (१) तय्यार किया है. उक्त दानपत्रमें पुरुषोत्तमदेवका राज्याभिषेक वर्ष ५ लिखा है. उक्त राजाका राज्याभिषेक ई० सन् १४७८ में हुआ था, इस-लिये इस दानपत्रका समय वि० सं० १५४० आता है. इसी लिपिसे प्रचलित उड़िया लिपि बनी है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

श्री जय दुर्गायै नम : । वीर श्री गजपति गउडेश्वर नव कोटि कर्नाटकलवर्गेश्वर श्रीपुरुषोत्तमदेव महाराजङ्कर । पोतेश्वर भटङ्कु दान शासन पटा । ए ५ अङ्क मेष दि १० अं सोमवार ग्रहणकाले गङ्गागर्भे पुरुषो (२)—

लिपिपत्र २५ वां.

यह लिपिपत्र मौर्य राजा अशोकके शहबाज़ गिरिपरके गांधार लिपिके लेखकी छापसे तय्यार किया है. इस लिपिमें 'आ', 'ई', 'ऊ', 'ऐ' और 'औ', तथा उनके चिन्ह नहीं हैं. 'इ' का चिन्ह तिरछी लकीर है, जो व्यंजनको काटती हुई आधी ऊपर और आधी नीचे रहती है (देखो कि, ति, लि, प्रि). 'उ' का चिन्ह एक छोटीसी आडी लकीर है, जो व्यंजनकी बाईं ओर नीचेको लगाई जाती है (देखो गु, तु, हु), और कभी कभी उक्त लकीरको घुमाकर गांठ भी बनादेते हैं (देखो जु). 'ए' का चिन्ह एक छोटीसी खड़ी, आड़ी या तिरछी लकीर है, जो बहुधा

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १, पृष्ठ ३५४ के पासकी प्लेट).

(२) इस दानपत्रकी भाषा संस्कृत मिश्रित उड़िया है, इसलिये शब्द टूटे फूटे रक्खे हैं.

व्यंजनके ऊपरकी तरफ़ लगती है (देखो दे, ये, ते). 'ओ' का चिन्ह एक छोटीसी तिरछी लकीर है, जो व्यंजनकी बाईं बाजूपर लगती है (देखो नो, मो, यो). अनुस्वारका मुख्य चिन्ह V है, जो अक्षरके नीचेको लगता है (देखो अं, वं, षं), परन्तु कितनेएक अक्षरोंके साथ भिन्न प्रकार से भी लगाया हुआ पायाजाता है, जैसा कि, 'कं, मं, यं, शं और हं' में बतलाया गया है. जैसे वर्तमान देवनागरी लिपिमें क्र, त्र, प्र, व्र, आदि संयुक्ताक्षरोंमें 'र' का चिन्ह एक आडी लकीर है, वैसेही गांधार लिपिके संयुक्ताक्षरोंमें भी 'र' का चिन्ह आडी लकीर है, जो पूर्व व्यंजन की दाहिनी ओरको लगाईजाती है (देखो त्र, द्र, ध्र, प्रि आदि). संयुक्ताक्षरमेंसे पहिला अक्षर ऊपर, और दूसरा नीचे लिखाजाता है (देखो स्त), परन्तु कहीं कहीं इससे विपरीत भी पाया जाता है (देखो ह्य), जो लिखने वालेका दोष है. 'धर्मलिपि' को 'ध्रमलिपि', 'प्रियदर्शी' को 'प्रियद्राशि' लिखा है, सो भी लेखक दोषही है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

अयं ध्रमलिपि देवनं प्रिअस रञो लिखपित हिद नो किचि जिवे आर — — प्रयेह्यतवे नो पि च समज कटव बहुक हि दोष समयस देवनं प्रियो प्रियद्राशि रय — खति अठि पिचअ कतिअ समय सेस्तमते देवनं प्रिअस प्रिअद्राशिस रञो पुरे महनससि देवनं प्रियस प्रियद्राशिस रञो अनुदिवसो बहुनि प्र — — तसहंसनि (१)—

लिपिपत्र २६ वां.

यह लिपिपत्र तुरुष्कवंशी राजा कनिष्कके समयके, [शक] संवत् ११ के गांधार लिपिके ताम्रपत्रकी छापोंसे (२) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र २५ की लिपिसे बहुत मिलती हुई है, परन्तु 'अ', 'इ', 'क' आदि कितनेएक अक्षरोंके बीचका हिस्सा दबा हुआ और नीचेका

---

(१) इयं धर्मलिपिर्देवानां प्रियस्य राज्ञो लेखिता इह नो किञ्चिज्जीवं आरभ्य प्रहोतव्यं नो अपि च समाजः कर्तव्या बहुका हि दोषाः समाजस्य देवानां प्रियो प्रियदर्शी राजा पश्यति अस्ति पित्रा कृताः समाजाः श्रेष्ठमताः देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञः पुरा महानसे देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञो ऽनुदिवसं बहूनि प्राणशतसहस्राणि—

(२) एशियाटिक सोसाइटी बङ्गालका जर्नल (जिल्द ३९, हिस्सा १, पृष्ठ ६८ के पासकी प्लेट), इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १०, पृष्ठ ३२४ के पासकी प्लेट).

हिस्सा बाईं ओर नमा हुआ है, तथा ख, च, छ, ठ, त, ष और स, में थोड़ासा फ़र्क़ है. 'उ' का चिन्ह गांठसा बनाया है (देखो छु, नु, पु), और अनुस्वारका चिन्ह ◡ है (देखो ठिं, मं, रं, सं).

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

महरजस्स रजतिरजस्स देवपुत्रस्स कनिष्कस्स संवत्सरे एकदशे सं ११ दइसिकस्स (१) मसस्स दिवसे अठविशे दि २८ अत्र दिवसे भिछुस्स नगदतस्स संखकटिस्स (?) अचय्यदमत्रतशिष्यस्स अचय्य-भवप्रशिष्यस्स यठिं अरोपयतो इह दमने विहरस्वमिनि उपसिकअ अनंदिअ (२)—

लिपिपत्र २७ वां.

यह लिपिपत्र सातवाहन (आंध्रभृत्य) वंशके राजा पुळुमायिके समयके नासिककी गुफाके लेखकी छापसे (३) तय्यार किया है. उक्त लेखका समय विक्रम संवत्की दूसरी शताब्दीका प्रारम्भ होना चाहिये (देखो पृष्ठ ३२, नोट ४). यह लिपि अशोकके लेखोंकी लिपिसे बनी है, और दक्षिणकी बहुधा समस्त प्राचीन लिपियोंका मूल यही है. इस लिपिपत्रसे लगाकर लिपिपत्र ३९ तक दक्षिणकी ही लिपियें हैं.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

सिद्ध(द्धं) रञो वासिठिपुतस सिरिपुळुमायिस संवछरे एकुनवीसे १९ गिम्हानपखे बितीये २ दिवसे तेरसे १३ राजरञो गोतमीपुतस हिमवतमेरुमदरपवतसमसारस असिकसुसकमुळकसुरठकुकुरापरातअनु-पविदभआकरावतिराजस विझछव (४)—

---

(१) "दइसिक" (Dæsius) मकदूनियाके नवमें महीनेका नाम है.

(२) महाराजस्य राजातिराजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य संवत्सरे एकादशे सं ११ दइसिकस्य मासस्य दिवसे अष्टाविंशे दि २८ अस्मिन्दिवसे भिक्षोर्नागदत्तस्य सांख्यकृतिनः (?) आचार्यदामत्रातशिष्यस्य आचार्यभवप्रशिष्यस्य अस्थि आरोपयत इह दमने विहारस्वामिन्या उपासिकाया आनन्द्याः—

(३) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ वेस्टर्न इण्डिया (जिल्द ४, प्लेट ५२, नम्बर १८),

(४) सिद्धं राज्ञो वासिष्ठीपुत्रस्य श्रीपुळुमायेः संवत्सरे एकोनविंशे १९ ग्रीष्माणां पक्षे द्वितीये २ दिवसे त्रयोदशे १३ राजराजस्य गौतमीपुत्रस्य हिमवन्मेरुमन्दरपर्वतसमसारस्य असिकसुसक-मुळकसुराष्ट्रकुकुरापरान्तानूपविदर्भाकरावन्तिराजस्य विन्ध्यर्क्षव—

लिपिपत्र २८ वां.

यह लिपिपत्र पल्लववंशके राजा विष्णुगोपवर्माके दानपत्रकी छाप-से (१) तय्यार किया है. उक्त दानपत्रमें कोई प्रचलित संवत् नहीं दिया, परन्तु अक्षरोंकी आकृतिपरसे विक्रम संवत्की ४ थी या ५ वीं शताब्दीकी लिपि प्रतीत होती है. इसको लिपिपत्र २७ वें से मिलाकर देखनेसे प्रत्येक अक्षरमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन पाया जाता है. अक्षरोंके सिर छोटे छोटे चौखूंटे बनाये हैं. 'औ, ख, घ, ङ, ठ, फ और ज्ञ' अक्षर जो इसमें नहीं मिले, वे पल्लवोंकेही अन्य दानपत्रोंसे छांटकर रक्खे हैं.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

जितं भगवता श्रीविजयपलक्कदस्थानात् परमब्रह्मण्यस्य स्वबाहुब-लार्जितोर्जितक्षात्रतपोनिधेः विहितसर्व्वमर्य्यादस्य स्थितिस्थितस्यामिता-त्मनो महाराजस्य श्रीस्कन्दवर्म्मण : प्रपौत्रस्यार्च्चितशक्तिसिद्धिसम्पन्नस्य प्रतापोपनतराजमण्डलस्य महाराजस्य वसुधातलैकवीरस्य श्रीवीरवर्म्म-

लिपिपत्र २९ वां.

यह लिपिपत्र जान्हवी (गंगा) वंशके राजा कोङ्गणि दूसरेके [शक] संवत् ३८८ के दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इस दान पत्रके संवत्को कितनेएक विद्वान शक संवत् अनुमान करते हैं, परन्तु अक्षरोंकी आकृतिपरसे विक्रम संवत्की ९ वीं शताब्दीके पास पासकी लिपि प्रतीत होती है, इसलिये यदि इस दानपत्रका संवत् गांगेय संवत् हो तो आश्चर्य नहीं. इसकी लिपि लिपिपत्र २७ और २८ से बहुत भिन्न, और ३१ वें से मिलती हुई है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

ॐ स्वस्ति जितम्भगवता गतघनगगनाभेन पद्मनाभेन श्रीमद्ज्जा-(ज्जा)न्हवीय – लामला(ल)व्योमावभ(भा)सनभाश्क(स्क)र : स्वखड्ग्यैक-(ड्गैक)प्रह(हा)रखण्डितमहाशिलास्तम्भलब्धबलपराक्रमो दारणो(रुणा)रि-गणाविदारणोपलब्धव्रणविभूषणविभूषित[:] कण्वायनसगोत्रस्य श्रीमा-न्कोङ्गणिमहाधिराज[:] ॥

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ५, पृष्ठ ५०-५१ के बीचकी प्लेट).

(२) कुर्ग इन्स्क्रिप्शन्स (पृष्ठ ४ के पासकी प्लेट).

लिपिपत्र ३० वाँ.

यह लिपिपत्र चालुक्य वंशके राजा मंगलीश्वरके समयके शक संवत् ५०० के लेखकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र २८ से मिलती हुई है, परन्तु 'ख, ग, ट, त, न, थ, श' आदि कितनेएक अक्षरोंमें फ़र्क़ है, और अक्षरोंके सिर चौखूंटे नहीं, किन्तु छोटी लकीर से बनाये हैं.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

स्वस्ति ॥ श्रीस्वामिपादानुध्यातानाम्मानव्यसगोत्राणाङ्हारिती(रीति) पुत्राणा — अग्निष्टोमाग्निचयनवाजपेयपौण्डरिकबहुसुवर्ण्णाश्वमेधावभृथस्नानपवित्रीकृतशिरसां चल्क्यानां वंशे संभूत : शक्तित्रयसंपन्नः चल्क्यवंशाम्बरपूर्ण्णचन्द्र : अनेकगुणगणालंकृतशरीरस्सर्व्वशास्त्रार्थतत्वनिविष्टबुद्धिरतिबलपराक्रमोत्साहसंपन्न : श्रीम—

लिपिपत्र ३१ वाँ.

यह लिपिपत्र पूर्वी चालुक्य वंशके राजा अम्म दूसरेके दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसमें संवत् नहीं दिया, परन्तु उक्त राजाका राज्य शक संवत् ८६७-९२ तक रहा था, जिससे इस दानपत्रका समय शक संवत्‌की ९ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध ठहरता है. इसकी लिपि लिपिपत्र २९ से कुछ मिलती हुई है, और 'र' अक्षर प्राचीन तामिळ '.ꞈ' से बना हुआ प्रतीत होता है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

स्वस्ति श्रीमतां सकलभुवनसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारीतिपुत्राणां कौशिकीवरप्रसादलब्धराज्यानाम्मातृगणपरिपालितानां स्वामिमहासेनपादानुध्यातानां भगवन्नारायणप्रसादसमासादितवरवराह—

लिपिपत्र ३२ वाँ.

यह लिपिपत्र चालुक्य वंशके राजा पुलिकेशी पहिलेके दानपत्रकी छापसे (३) तय्यार किया है. इसमें शक संवत् ४११ लिखा है, परन्तु

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ३, पृष्ठ ३०५ के पासकी प्लेट).
(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १३, पृष्ठ २४८ के पासकी प्लेट).
(३) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ८, पृष्ठ ३४० के पासकी प्लेट).

इसकी लिपि शक संवत्की ९ वीं शताब्दीसे पहिलेकी नहीं है, इसलिये यह दानपत्र जाली होना चाहिये. इसकी लिपि लिपिपत्र ३१ से मिलती हुई है, किन्तु अक्षरोंके सिरका ढंग निराला ही है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

स्वस्ति जयन्त्यनन्तसंसारपारावारैकसेतव : महावीराह(र्है)त ⁅पू-ताश्चरणांबुजरेणव : श्रीमतां विश्वविश्वम्भराभिसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारि(री)तिपुत्राणां सप्तलो(लो)कमातृभिस्सप्तमातृभिरभिवर्द्धितानां कार्त्तिकेयपरिरक्षणप्राप्तकल्याणपरंपराणां—

लिपिपत्र ३३ वां.

यह लिपिपत्र पश्चिमी चालुक्य राजा विक्रमादित्य पहिलेके दानपत्रकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसमें शक संवत् ५३२ लिखा है, परन्तु इसकी लिपि शक संवत्की नवमी शताब्दीके आस पासकी है, जिससे यह दानपत्र जाली होना चाहिये. इसकी लिपि लिपिपत्र ३२ से मिलती हुई है, और कहीं कहीं 'म' भिन्नही प्रकारका है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ जयत्याविष्कृतं विष्णोर्व्वाराह(हं) क्षोपि(भि)तार्ण्णवन्दक्षिणोन्नतद्रं(दं)ष्ट्राग्रं(ग्र)विश्रान्तं भुवनं वपुः श्रीमतां सकळ(ल)भुवनस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारि(री)तिपुत्राणां सप्तलो[क]मातृभिस्सप्तमातृभिरभिवर्द्धितानां कार्त्ती(र्त्ति)केयपरिरक्षणप्राप्तकल्याणपरंपराणान्नारायणप्र—

लिपिपत्र ३४ वां.

यह लिपिपत्र गंगावंशी राजा देवेन्द्रवर्मा (२) के गांगेय संवत् ५१ के दानपत्रकी छापसे (३) तय्यार किया है. इसमें कहीं कहीं 'अ, ख, ग, ज, ड, म, य, श, ष और ह' पहिलेसे भिन्नही प्रकारके हैं.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः-

ॐ स्वस्ति अमरपुरानुकारिण[ः] सर्वतु(र्तु)सुखरमणीयाद्विजयव-

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ७, पृष्ठ २१९ के पासकी प्लेट).

(२) लिपिपत्र ३४ वें के सिरेपर 'देवेन्द्रवर्मा' के स्थानपर 'नरेन्द्रवर्मा' छपगया है, जो अशुद्ध है.

(३) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द १३, पृष्ठ २७४ के पासकी प्लेट).

तें[ः] कलिङ्गा(ङ्ग)नगराधिवासका[त्] महेन्द्राचलामलशिखरप्रतिष्ठितस्य सचराचरगुरो[ः] सकलभुवननिर्माणैकसूत्रधारस्य शशाङ्कचूडामणि(णे)-र्भगवतोगोकर्णस्वा—

लिपिपत्र ३५ वां.

यह लिपिपत्र गंगा वंशके राजा अरिवर्माके दानपत्रकी छापसे (१) तय्यार किया है. इस दानपत्रमें शक संवत् १६९ लिखा है, परन्तु अक्षरोंकी आकृतिपरसे इसकी लिपि शक संवतकी नवमीं शताब्दीसे पहिलेकी प्रतीत नहीं होती, इसलिये यह दानपत्र पीछेसे जाली बनाया हुआ होना चाहिये. इसमें 'अ, आ, ल और श्री' अक्षर भिन्नही प्रकारसे लिखे हैं.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः—

स्वस्त(स्ति) जितम्भगवता गता(त)घनगगनाभेन पद्मनाभेन श्री-मद्जा(ज्जा)न्हवे(वी)यकुल(ला)मलव्योमावभासनभासुरभास्कर[ः] स्वखड्गै-(ड्गै)कप्रह(हा)रखण्डितमहाशिळा(ला)स्तम्भलब्धवळ(ल)पराक्रमो दारणो-(रुणा)रिगणाविदारणोपलब्धव्रणविभूषणविभूषित[ः] का(क)ण्वायनसगो-त्रस्य श्रीमा—

लिपिपत्र ३६ वां.

यह लिपिपत्र पल्लव वंशके राजा नन्दिवर्माके दानपत्रकी छापसे (२) तय्यार किया है. इसमें कोई प्रचलित संवत् नहीं दिया, किन्तु अक्षरोंकी आकृतिपरसे शक संवत्की नवमी शताब्दीके आस पासकी लिपि पाई जाती है. इस लिपिको "प्राचीन ग्रन्थ लिपि" कहते हैं, जिसमें प्राचीन तामिळ लिपिका कुछ मिश्रण है. बहुतसे अक्षर पहिलेसे भिन्न प्रकारके है, और अनुस्वारका बिन्दु अक्षरके आगे रक्खा है.

दानपत्रकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तरः—

श्री स्वस्ति सुमेरुगि[रि]मूर्द्धनि प्रवरयोगबद्धासनं जगत्र(त्त्र)यवि-भूतये रविशशांकनेत्रद्वयमुमासहितमादरादुदयचन्द्रलक्ष्मी(क्ष्मी)प्रदम् सदा-

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ८, पृष्ठ २१२ के पासकी प्लेट).
(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ८, पृष्ठ २७४ के पासकी प्लेट).

शिवमहन्नमामि शिरसा जटाधारिणम् । श्रीमाननेकरणभुवि(भूमि)षु पल्लवाय राज्यप्रद्र : पर—

लिपिपत्र ३७ वां.

यह लिपिपत्र काकत्य वंशके राजा रुद्रदेवके समयके शक संवत् १०८४ के लेखकी छापसे (१) तय्यार किया है. इसकी लिपि लिपिपत्र ३३ से अधिक मिलती है, और इसीसे वर्त्तमान कनड़ी लिपि बनी है.

लेखकी अस्ली पंक्तियोंका अक्षरान्तर:-

श्रीमत्रि(त्त्रि)भुवनमल्लो राजा काकत्यवंशसंभूत : । प्रबलरिपुवर्ग्गनारीवैधव्यविधायकाचार्य्य : ॥ श्रीकाकत्यनरेंद्रवृं(वृं)दतिलको वैरींद्रहृत्तापक : सत्पात्रे वसुदायकः प्रतिदिनं कांतामनोरंजकः दुष्कांताचयदूषकः पुरहर :(र)श्रीपादपद्मार्च्च—

लिपिपत्र ३८ वां.

यह लिपिपत्र रविवर्माके दानपत्रकी छाप (२), और बर्नेल साहिबकी बनाई हुई साउथ इण्डियन पेलिओग्राफीकी प्लेट १७ से तय्यार किया गया है. इसकी लिपि शक संवत्की ८ वीं शताब्दीके आस पासकी है, जिसको "प्राचीन तामिळ" या "वट्टेळुत्तु" कहते हैं. यह लिपि भारतवर्षकी अन्य लिपियोंकी तरह अशोकके लेखोंकी लिपिसे नहीं बनी, किन्तु भारतवर्षके दक्षिणी विभागके रहने वाले द्रविडियन लोगोंकी निर्माणकी हुई एक स्वतंत्र लिपि है, क्योंकि इसके अक्षर अशोकके लेखोंके अक्षरोंसे बिल्कुल नहीं मिलते (३), और इसमें केवल उतनेही अक्षर हैं, जो उन लोगोंकी भाषामें बोलेजाते हैं. इस लिपिके बननेका समय निश्चय करनेके लिये कोई साधन नहीं है, परन्तु आठवीं शताब्दीके पहिलेसे इसका प्रचार अवश्य था. दक्षिणकी लिपियोंमें इसका मिश्रण कुछ कुछ हुआ है, और इस लिपिके जो दानपत्र मिले हैं, उनकी भाषा संस्कृत और प्राकृतसे बिल्कुल भिन्न है, इसलिये अस्ली पंक्तियें नहीं दी गईं.

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ११, पृष्ठ १२-१७ के बीचकी प्लेटें).

(२) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द २०, पृष्ठ २९० के पासकी प्लेट),

(३) केवल " ई, प और र " कुछ कुछ अशोकके लेखोंकी लिपिसे मिलते हैं.

लिपिपत्र ३९ वाँ.

इस लिपिपत्रमें शक संवत्की ११ वीं से १४ वीं शताब्दीके बीचकी तामिळ लिपि दर्जकी है. इसको लिपिपत्र ३८ से मिलाकर देखनेसे पायाजाता है, कि अशोकके लेखोंकी लिपिसे बनी हुई, दक्षिणकी लिपियोंका कुछ अंश इसमें प्रवेश होनेसे अक्षरोंकी आकृति, और व्यंजनोंके साथ जुडे हुए स्वर चिन्होंमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है. इसी लिपिसे वर्तमान तामिळ लिपि बनी है.

लिपिपत्र ४० वाँ.

इस लिपिपत्रमें भिन्न भिन्न लेख और दानपत्रोंसे छांटकर ऐसी संख्या रक्खी गई हैं, जो शब्द और अंक दोनोंमें लिखी हुई मिली हैं. वर्त्तमान देवनागरी अंकको (   ) में लिखकर उसके आगे अस्ली शब्द, और उसके बाद [   ] में अस्ली अंक रक्खा है.

अस्ली शब्दोंका अक्षरान्तरः-

बितीये [२]. ततिये [३]. चोथे [४]. पचमे [५]. छठे [६]. सातमे [७]. अठ [८]. -ईशभि : [१०]. त्रयोदश [१० ३]. पनरस [१० ५]. एकुनवीसे [१० ९]. विंशति [२०]. पञ्चविंश [२० ५]. त्रिंश [३०]. सप्तपञ्चाशे [५० ७]. द्विसप्ततितमे [७० २]. सत [१००]. सतानि बे [२००]. शतत्रये एकनवत्ये [३०० ९० १]. शत चतुष्टये एक विंञ्शत्यधिके [४०० २० १]. शतानि पंच [५००]. शतषट्के एकूनाशीत्यधिके [६०० ७० ९]. शतेषु नवसु त्रयस्त्रिंञ्शदधिकेषु [९३३]. सहस्र [१०००]. सहस्रानि बे [२०००]. सहस्रानि त्रिणि [३०००]. सहस्रेहि चतुहि [४०००]. सहस्रानि अठ [८०००]. सहस्रैरष्टाभि : [८०००]. सहस्राणि सतरि [७००००].

लिपिपत्र ४१ और ४२ वाँ.

इनमें पहिले देवनागरी लिपिका अंक लिख प्रत्येक अंकके सामने वही अंक भिन्न भिन्न प्राचीन लेख, दानपत्र और सिक्कोंकी छापोंसे छांटकर पृथक् पृथक् पंक्तियोंमें रक्खा है. अंतिम ३ पंक्तियोंमें पंडित भगवानलाल इंद्रजीके प्रसिद्ध किये अनुसार (१) बौद्ध और जैन ग्रन्थोंमें पाये हुए, अंक बतलानेवाले अक्षर और चिन्ह लिखे हैं (प्राचीन अंकोंके लिये देखो पृष्ठ ४७-५१).

---

(१) इण्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ६, पृष्ठ ४४-४५, पंक्ति ७, ८, ९)

लिपिपत्र ४३ वां.

इस लिपिपत्रके ४ विभाग किये हैं, जिनमेंसे पहिले तीनमें तो लिपिपत्र ४१ और ४२ में, जो अंक लिखने बाक़ी रहगये, वे दर्ज किये हैं, और चौथे विभागमें गांधार लिपिके अंक भिन्न भिन्न लेखोंसे छांटकर रक्खे हैं, जो दाहिनी ओरसे बाईं ओरको पढ़ेजाते हैं (गांधार लिपिके अंकोंके लिये देखो पृष्ठ ५३-५४).

लिपिपत्र ४४ वां.

इस लिपिपत्रमें वर्तमान कश्मीरी (शारदा) और पंजाबी (गुरु-मुखी) लिपियें दर्जकी हैं. कश्मीरी लिपिके बहुतसे अक्षर नागरी जैसे ही हैं, और थोड़े अक्षरोंमें फ़र्क़ है. 'घ, ङ, छ, ठ, ण, त, ध, फ, र, ल, ह' आदि अक्षर प्राचीन आकृतिसे अधिक मिलते हुए हैं. गुप्त लिपिमें परिवर्तन होते होते यह लिपि बनी है.

पंजाबी लिपिके बहुतसे अक्षर देवनागरीसे मिलते हैं. गुरु अंगदके पहिले पंजाबमें बहुधा महाजनी लिपिही व्यवहारमें प्रचलित थी, और संस्कृत पुस्तक नागरीसे मिलती हुई लिपिमें लिखे जाते थे. महाजनी लिपि अपूर्ण होनेसे उसमें लिखा हुआ शुद्ध नहीं पढ़ा जासक्ता था, इस-लिये गुरु अंगदने अपने धर्म पुस्तकके लिये संस्कृत पुस्तकोंकी लिपिसे वर्तमान पंजाबी लिपि बनाई, इसलिये इसको गुरुमुखी कहते हैं.

लिपिपत्र ४५ वां.

इसमें वर्तमान ताकरी और महाजनी लिपि दर्जकी हैं. ताकरी लिपि पंजाबके पहाड़ी हिस्सोंमें प्रचलित है, जिसके 'घ, च, छ, ज, ञ, ढ, ण, त, ध, न, फ, र और ल' प्रायः प्राचीन शैलीसे मिलते हुए हैं, और बाक़ीके अक्षरोंमेंसे बहुतसे देवनागरीसे मिलते हैं.

महाजनी लिपि पश्चिमोत्तरदेश व पंजाब आदिमें प्रचलित है. वहांके व्यापारी, जो शुद्ध लिखना नहीं जानते, अपना हिसाब, हुंडी, चिट्ठी आदि इसी लिपिमें लिखते हैं. इसमें व्यंजनके साथ स्वरोंके चिन्ह नहीं लगाये जाते इसलिये इस लिपिमें लिखा हुआ शुद्ध नहीं पढ़ाजाता, किन्तु जिनको इसका अधिक अभ्यास होता है, वे अंदाज़से पढ़लेते हैं. यह लिपि नागरीसे बनी है, परन्तु शुद्ध लिखना न जानने वालोंके हाथसे ऐसी दशाको पहुंची है.

लिपिपत्र ४६ वां.

इसमें वर्तमान कैथी और मैथिल लिपियें दर्जकी हैं. कैथी लिपि पश्चिमोत्तरदेश और बिहारमें प्रचलित है. यह लिपि देवनागरीसे ही बनी है, और उससे बहुत ही मिलती हुई है. 'अ' को 'श्र' जैसा लिखा है सो भी प्राचीन 'अ' से ही बना है. 'ख' के स्थानपर 'प' लिखा है.

मैथिल लिपि बंगलासे बहुत मिलती हुई है, जो सेन राजाओंके समयकी प्रचलित लिपिसे बनी है. इसका प्रचार मिथिला देशमें है, जहांके संस्कृत पुस्तक भी इसी लिपिमें लिखे जाते हैं.

लिपिपत्र ४७ वां.

इस लिपिपत्रमें वर्तमान बंगला और उड़िया लिपियें दर्जकी हैं. बंगलाका प्रचार सारे बंगालदेशमें है, और सेन राजाओंके समयके लेखोंमें, जो लिपि पाई जाती है, उसीसे यह बनी है.

उड़िया लिपि उड़ीसा देशकी है, जो लिपिपत्र २४ वें में दर्ज की हुई लिपिसे बनी है.

लिपिपत्र ४८ वां.

इस लिपिपत्रमें वर्तमान गुजराती और मोड़ी (महाराष्ट्री) लिपियें दर्जकी हैं. गुजराती लिपिके बहुतसे अक्षर देवनागरीसे मिलते हुए हैं, बाक़ीके अक्षरोंमेंसे कितनेएक स्वयं प्राचीन अक्षरोंसे बने हैं, और कितने-एक दाक्षिणकी लिपियोंसे लिये हुए हैं.

मोड़ी लिपि महाराष्ट्रदेशमें प्रचलित है. इसके भी बहुतसे अक्षर तो देवनागरीसे मिलते हैं, और बाक़ीके दक्षिणकी लिपियोंसे बने हैं.

लिपिपत्र ४९ वां.

इसमें वर्तमान द्रविड़ और कनडी लिपियें लिखी हैं. द्रविड़ लिपि लिपिपत्र ३६ में दर्जकी हुई 'प्राचीन ग्रन्थ लिपि' से बनी है, और लिपिपत्र ३७ वें की लिपिसे कनडी बनी है.

लिपिपत्र ५० वां.

इसमें वर्तमान तुळु और तामिळ लिपियें हैं. तुळु लिपि भी द्रविड़ लिपिकी नाईं लिपिपत्र ३६ वें की 'प्राचीन ग्रन्थ लिपि' से बनी है, और लिपिपत्र ३९ वें की लिपिसे तामिळ बनी है.

लिपिपत्र ७१ वां.

इस लिपिपत्रमें अशोकके समयकी लिपिसे क्रमशः परिवर्त्तन होते होते वर्तमान देवनागरी लिपि कैसे बनी, यह बतलाया गया है. ऐसे ही भारतवर्षकी दूसरी वर्तमान लिपियें भी बतलाई जासक्ती हैं.

लिपिपत्र ७२ वां.

इस लिपिपत्रमें भिन्न भिन्न लेख, दानपत्र और सिक्कोंसे छांटकर ऐसे अक्षर दर्ज किये हैं, जो लिपिपत्र १ से ३९ पर्यन्तमें नहीं आये.

लिपिपत्र दसवां – वल्लभीके राजा धरसेन दूसरेके दानपत्रसे (वल्लभी) सम्वत् २५२

अ आ इ उ ए क ख ग घ ङ च छ ज ञ ट ठ ड ण त थ द ध न प फ ब

ब भ म य र ल व श ष स ह णा मा रा भि मि की णी तु नु पु भु

यु रु सु चू पू मू से हे गै मै पो मो धौ मौ छ स्व ह्न क्र क्षा ङ्का च्छि ज्ञा न्य ट्ट ण्ड

त्तु द्रो न्न प्र र्जि त्थे र्बि श्री ष्ठ स्था ×कु

लिपिपत्र १९वां- हैहय वंशके राजा जाजल्लदेवके समयके लेखसे (चेदि) सं० ८६६

अ आ इ ई उ ए ऐ क ख ग च छ ज ट ठ ड ण त थ द ध न

अ आ इ ई उ ए ऐ क ख ग च छ ज ट ठ ड ण त थ द ध न

प फ ब भ म य र ल व श ष स ह ह्रां

प फ ब भ म य र ल व श ष स ह ह्रां

मा ति सी भु भू ते से तै है को लो कौ सौ मृ त्तृ

मा ति सी भु भू ते से तै है को लो कौ सौ मृ त्तृ

क्ष क्षि क्य च्छ ज्ञा ज्य त्र त्थि र्णा श्री श्रु स्र स्त्री स्थो त् ऽ

क्ष क्षि क्य च्छ ज्ञा ज्य त्र त्थि र्णा श्री श्रु स्र स्त्री स्थो त् ऽ

तद्वंश्यो हैहय आसीद्यतो जायन्त हैहयाः। ---------- [3]त्यासन्प्रिया
सती॥३॥ तेषां हैहयभूभुजां समभवद्वंशे स चेदीश्वरः श्रीकोकल्ल इति स्मर
प्रतिकृतिर्विश्वप्रमोदो यतः। येनायं त्रितसोप्या ------ [4]मन मातुं यशः स्वीयं प्रेषि
तमुच्चकैः कियदिति ब्रह्माण्डमन्तः क्षितौ॥४॥ अष्टादशास्य रिपुकुंभिविभंगसिंहाः [illegible]

लिपिपत्र २३ वां- राजा दामोदरके समय के (चितागौंगसे मिलेहुए) दानपत्र से. शक सं० ११६५

अ उ ए : क ख ग घ ङ च ज ञ ट ड ढ ण त थ द

ध न प फ भ म य र ल व श ष स ह त् ऊँ त

का वि ली कु तु पु शु सु तू भू सू के ने कै रो लो कौ ह्न न्न

क्र क्षि स्मी ङ्ग ञ्च च्छि ज्ञा न्न ञ्ज ण्ड न्धु स्मो धौ लभ्य श्री ष्ट स्वस्त

लिपिपत्र ७० वां— शब्दों और अंकोंमें दी हुई संख्या· विविध लेख और दानपत्रोंसे·

लिपिपत्र ४७ वां- बंगला और उड़िया वर्णमाला व अंक.

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
बंगला	অ	আ	ই	ঈ	উ	ঊ	ঋ	ৠ	ঌ		এ	ঐ	ও	ঔ	অং	অঃ
उड़िया	ଅ	ଆ	ଇ	ଈ	ଉ	ଊ	ଋ	ୠ	ଌ	ୡ		ଐ	ଓ	ଔ		

	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ
बंगला	ক	খ	গ	ঘ	ঙ	চ	ছ	জ	ঝ	ঞ	ট	ঠ	ড	ঢ	ণ	ত	থ
उड़िया	କ	ଖ	ଗ	ଘ	ଙ	ଚ	ଛ	ଜ	ଝ	ଞ	ଟ	ଠ	ଡ	ଢ	ଣ	ତ	ଥ

	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
बंगला	দ	ধ	ন	প	ফ	ব	ভ	ম	য	র	ল	ব	শ	ষ	স	হ
उड़िया	ଦ	ଧ	ନ	ପ	ଫ	ବ	ଭ	ମ	ଯ	ର	ଲ	ଵ	ଶ	ଷ	ସ	ହ

	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	१	२	३	४	५	६	७	८	९
बंगला	কা	কি	কী	কু	কূ	কে	কৈ	কো	কৌ	১	২	৩	৪	৫	৬	৭	৮	৯
उड़िया	କା	କି	କୀ	କୁ	କୂ	କେ	କୈ	କୋ	କୌ	୧	୨	୩	୪	୫	୬	୭	୮	୯

लिपि पत्र ५८ वां - गुजराती और मोडी वर्णमाला व अंक.

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
गुजराती	અ	આ	ઇ	ઈ	ઉ	ઊ	ઋ	ૠ	ઌ		એ	ઐ	ઓ	ઔ	અં	અઃ
मोडी	𑘀	𑘁	𑘂	𑘃	𑘄	𑘅	𑘆	𑘇	𑘈	𑘉	𑘊	𑘋	𑘌	𑘍	𑘀𑘽	𑘀𑘾

	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द
गुजराती	ક	ખ	ગ	ઘ	ઙ	ચ	છ	જ	ઝ	ઞ	ટ	ઠ	ડ	ઢ	ણ	ત	થ	દ
मोडी	𑘎	𑘏	𑘐	𑘑	𑘒	𑘓	𑘔	𑘕	𑘖	𑘗	𑘘	𑘙	𑘚	𑘛	𑘜	𑘝	𑘞	𑘟

	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ	क्ष	ज्ञ
गुजराती	ધ	ન	પ	ફ	બ	ભ	મ	ય	ર	લ	વ	શ	ષ	સ	હ	ળ	ક્ષ	જ્ઞ
मोडी	𑘠	𑘡	𑘢	𑘣	𑘤	𑘥	𑘦	𑘧	𑘨	𑘩	𑘪	𑘫	𑘬	𑘭	𑘮	𑘯	𑘎𑘿𑘬	𑘕𑘿𑘗

	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः	१	२	३	४	५	६	७	८	९
गुजराती	કા	કિ	કી	કુ	કૂ	કે	કૈ	કો	કૌ	કં	કઃ	૧	૨	૩	૪	૫	૬	૭	૮	૯
मोडी	𑘎𑘰	𑘎𑘱	𑘎𑘲	𑘎𑘳	𑘎𑘴	𑘎𑘹	𑘎𑘺	𑘎𑘻	𑘎𑘼	𑘎𑘽	𑘎𑘾	𑙑	𑙒	𑙓	𑙔	𑙕	𑙖	𑙗	𑙘	𑙙